ISBN: 978-93-5636-761-6

जगदगुरू रामभद्राचार्य जी का शैक्षिक दर्शन



- राजीव अग्रवाल
- नरेन्द्र सिंह
- अनुजा उपाध्याय

जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी का शैक्षिक दर्शन

राजीव अग्रवाल

डीन—शिक्षा संकाय

बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी

(उत्तर प्रदेश)

नरेंद्र सिंह

एम०ए० (हिन्दी), एम० एड०

अनुजा उपाध्याय

बी० एस-सी०, बी० एड०

जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी का शैक्षिक दर्शन

राजीव अग्रवाल

नरेन्द्र सिंह

अनुजा उपाध्याय

ISBN:

E -book संस्करण: 2022

मूल्य: 11

प्रकाशक:

अनुजा उपाध्याय

ग्राम—पोस्ट पचोखर,—नरैनी रोड अतर्रा, जिला- बांदा (उत्तर प्रदेश)

पिन कोड—210201

मोबाइल नंबर,—8707052117

ई-मेल—upadhayaanuja12345@gmail.com

प्राक्कथन

शिक्षा किसी राष्ट्र के नवनिर्माण एवं उनकी संस्कृति की वाहक होती है। शिक्षा के गौरवशाली अतीत पर ही उसके वर्तमान की दिशा निर्धारित होती है। शिक्षा एक उद्देश्य पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है। जिसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार उसकी कार्यप्रणाली एवं जीवन व्रत में परिवर्तन एवं परिमार्जन किया जाता है। शिक्षा न केवल पथ प्रदर्शक, ज्ञानवर्धक एवं प्रगति की द्योतक होती है बल्कि यह हमारी राष्ट्रीय गरिमा को संरक्षित एवं संवर्धित करती है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य की अंतर्निहित शक्तियों का विकास करके उसके व्यवहार का परिमार्जन एवं परिष्करण किया जाता है।

शिक्षा को केवल ज्ञान देने का साधन नहीं माना जा रहा परंतु जब तक शिक्षा जीवन के मूल्यों, आदर्शों एवं परंपराओं, मान्यताओं का परिचय न दें, तब तक वह शिक्षा नहीं कही जा सकती। आज भारत में फैली बुराइयों, सामाजिक कुरीतियों के कारण नैतिकता का हास होता जा रहा है। इन समस्याओं को हल करने के लिए समाज को शिक्षित होना होगा और इसके लिए शिक्षा व्यवस्था में बदलाव लाना होगा। समाज के उत्थान एवं उन्नति के लिए प्राचीन काल से ही धर्मगुरु, समाज सुधारकों के प्रयास सराहनीय रहे, जिनमें जगतगुरु रामभद्राचार्य जी का नाम अग्रणीय है।

प्रस्तुत पुस्तक का शीर्षक ‘‘जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी का शैक्षिक दर्शन" है। प्रस्तुत पुस्तक को छः अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय में भारत में शिक्षा का विकास, वर्तमान शिक्षा प्रणाली की समस्याएँ, समस्या का प्रादुर्भाव, अध्ययन की आवश्यकता, समस्या कथन, अध्ययन के उद्देश्य, संबन्धित साहित्य का अध्ययन अध्ययन विधि, अध्ययन के स्रोत एवं अध्ययन के परिसीमांकन का वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी का जीवन वृतांत, प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, परीलब्धियाँ, विरक्ति दीक्षा, जगतगुरु एवं धर्म चक्रवर्ती उपाधि, धार्मिक एवं स्वर्णिम यात्रा का वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय मे जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी का अनुपम कृतित्व, काव्य पाटव, महाकवि की चित्रात्मकता का उदाहरण, कुशल कवि के रूप में रामभद्राचार्य जी, आशु कवि के रूप में प्रतिष्ठा एवं महाकाव्य के अर्थ का वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी के दार्शनिक विचार, शिक्षा, अनुशासन, गुरु शिष्य संबंध, धार्मिक और नैतिक शिक्षा एवं राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय शिक्षा का वर्णन किया गया है।

पंचम अध्याय में जगतगुरु रामभद्राचार्य जी के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता का वर्णन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में निष्कर्ष, शैक्षिक निहितार्थ एवं भावी शोध हेतु सुझाव का वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक लघु शोध प्रबन्ध पर आधारित है। शोध कार्य के प्रकाशन से वैज्ञानिक ज्ञान भण्डार में वृद्धि होती है एवं नवीन अनुसन्धानों को प्रेरणा मिलती है। किसी भी शोध कार्य का तब तक कोई अर्थ नहीं है, जब तक कि वह जन सामान्य के लिए सुलभ न हो। प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में किया गया एक प्रयास है। यह पुस्तक निश्चित ही विद्यार्थियों में जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी के शैक्षिक विचारों को अवगत कराने में सहायक सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के सृजन में संदर्भ ग्रन्थ सूची मैं उल्लेखित विभिन्न पुस्तकों का सहयोग दिया गया है हम सदी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं

प्रस्तुत पुस्तक में अनेक तृतीया होना स्वाभाविक है। आता है यदि अनुभवी विद्वतगण अवगत कराने का कष्ट करेंगे तो, हम आभारी रहेंगे

रजीव अग्रवाल

नरेन्द्र सिंह

अनुजा उपाध्याय

अनुक्रमणिका

चित्र सूची

प्रथम अध्याय

भूमिका एवं अवधारणा

- ❖ प्रस्तावना
- ❖ शिक्षा:विकास की प्रक्रिया
- ❖ भारत में शिक्षा का विकास
- ❖ वर्तमान शिक्षा प्रणाली की समस्याएं
- ❖ धर्म और शिक्षा
- ❖ समस्या का प्रादुर्भाव
- ❖ अध्ययन की आवश्यकता
- ❖ समस्या कथन
- ❖ अध्ययन के उद्देश्य
- ❖ सम्बंधित साहित्य का अध्ययन
- ❖ अध्ययन विधि
- ❖ अध्ययन के स्रोत

द्वितीय अध्याय

जीवन वृतांत एवं पुरस्कार

- जीवन वृतान्त
- आविर्भाव
- शारीरिक स्थिति एवम् दृष्टि बाधन
- प्राथमिक शिक्षा
- उच्च शिक्षा
- परिलब्धियां
- विरक्ति दीक्षा
- जगतगुरु एवं धर्म चक्रवर्ती उपाधि
- धार्मिक प्रवचन
- स्वर्णिम यात्रा

तृतीय अध्याय

साहित्य सर्जना

- अनुपम कृतित्व
- काव्य पाटव
- महाकवि की चित्रात्मकता का उदाहरण
- कुशल कवि के रूप में रामभद्राचार्य जी
- आशु कवि के रूप में प्रतिष्ठा
- महाकाव्य का अर्थ

चतुर्थ अध्याय

शैक्षिक दर्शन एवम् विचारधारा

- ❖ जगतगुरु रामभद्राचार्य जी के दार्शनिक विचार
- ❖ शिक्षा
- ❖ अनुशासन
- ❖ गुरु शिष्य सम्बन्ध
- ❖ धार्मिक और नैतिक शिक्षा
- ❖ राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय शिक्षा

पंचम अध्याय

शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता

- शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता

छठा अध्याय

निष्कर्ष एवं सुझाव

- निष्कर्ष
- शैक्षिक निहितार्थ
- भावी शोध हेतु सुझाव

प्रथम अध्याय

भूमिका एवम् अवधारणा

1.1 प्रस्तावना

भारत एक ऐसा देश है, जो धर्म एवं अध्यात्म के क्षेत्र में विश्व का मार्गदर्शक रहा है। हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति एवं आदर्शों, परंपराओं का ही प्रभाव था, कि संपूर्ण विश्व में हमारी सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार हुआ। हजारों वर्षों से मनुष्य ज्ञान की वृद्धि के साथ साथ मनुष्य के चिंतन में भी वृद्धि हो रही है।

मानव समस्त प्राणियों में बौद्धिक रूप से श्रेष्ठ है, उनमें ज्ञान प्राप्त करने और ज्ञान की क्षुधा तृप्त करने की असीम अभिलाषा व क्षमता रहती है। मानव की उत्पत्ति के समय से ही यह प्रमाण मिले हैं, कि जितनी भी उन्नति और प्रगति मानव ने की है वह उसकी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण ही संभव हो सकी है।

शिक्षा किसी राष्ट्र के नवनिर्माण एवं उनकी संस्कृति की वाहक होती है। शिक्षा के गौरवशाली अतीत पर ही उसके वर्तमान की दिशा निर्धारित होती है। शिक्षा एक उद्देश्य पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है। जिसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार उसकी कार्यप्रणाली एवं जीवन व्रत में परिवर्तन एवं परिमार्जन किया जाता है। शिक्षा न केवल पथ प्रदर्शक, ज्ञानवर्धक एवं प्रगति की द्योतक होती है बल्कि यह हमारी राष्ट्रीय गरिमा को संरक्षित एवं संवर्धित करती है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य की अंतर्निहित शक्तियों का विकास करके उसके व्यवहार का परिमार्जन एवं परिष्करण किया जाता है।

शिक्षा को केवल ज्ञान देने का साधन नहीं माना जा रहा परंतु जब तक शिक्षा जीवन के मूल्यों, आदर्शों एवं परंपराओं, मान्यताओं का परिचय न दें, तब तक वह शिक्षा नहीं कही जा सकती। आज भारत में फैली बुराइयों, सामाजिक कुरीतियों के कारण नैतिकता का ह्रास होता जा रहा है। इन समस्याओं को हल करने के लिए समाज को शिक्षित होना होगा और इसके लिए शिक्षा व्यवस्था में बदलाव लाना होगा।

समाज के उत्थान एवं उन्नति के लिए प्राचीन काल से ही धर्मगुरु, समाज सुधारकों के प्रयास सराहनीय रहे हैं। समय-समय पर विभिन्न संस्थाओं ने समाज में शिक्षा के व्यापक प्रसार के लिए योगदान दिया है। जैसे समाज में स्त्री शिक्षा, बालकों की शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा

आदि। इसी क्रम में एक और संस्थान समाज में वंचित और पिछड़े बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दे रहाहै। अतः प्रस्तुत लघु शोध वर्तमान परिस्थिति में विश्व जागृति मिशन के शैक्षिक योगदान के अध्ययन का एक प्रयास है।

1.1.1 शिक्षा: विकास की प्रक्रिया

हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में सबके लिए शिक्षा हमारे भौतिक और आध्यात्मिक विकास की बुनियादी आवश्यकता है। बालकों में कुछ जन्मजात शक्तियां रहती हैं। बालक इन्हीं जन्मजात शक्तियों के आधार पर व्यवहार करता है। शिक्षा बालक को सुसंस्कृत बनाने का माध्यम है। यह हमारी संवेदनशीलता और दृष्टि को प्रखर करती है। जिससे राष्ट्रीय एकता पनपती है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक एवं आध्यात्मिक शक्ति को अनुशासित करता है। इस प्रकार मनुष्य के अनुशासन के विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा के आधार पर ही अनुसंधान और विकास को संबल मिलता है, जो राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की आधारशिला है। शिक्षा समाज के भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों से संबंधित होती है। शिक्षा वर्तमान तथा भविष्य के निर्माण का अनुपम साधन है। इसी को राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण की धुरी माना गया है। अत: यह कहना उचित है, कि शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है, शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास संभव हो पाता समाज में ऐसी शिक्षा का होना नितांत आवश्यक है, जो हमारी संस्कृति, हमारे धर्म, मूल्यों से जुड़ी हो, क्योंकि धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में भारत की स्थिति अभी निराशाजनक है।

मनुष्य की शिक्षा उसे केवल परिस्थितियों के साथ सामंजस्य करना ही नहीं सिखाती है, वरन् उसे सामाजिक परिवर्तन करने और परिवर्तनों को स्वीकार करने के लिए तैयार करती हैं। इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों आदि में आवश्यकता अनुसार परिवर्तन होता रहता है।

हमारी वर्तमान शिक्षा में सभी प्रकार की शिक्षा पर बल देना चाहिए जिसके परिणाम स्वरूप ही मानव का सर्वांगीण विकास संभव है।

1.1.2 भारत में शिक्षा का विकास

भारतीय शिक्षा का इतिहास भारतीय सभ्यता का भी इतिहास है। भारतीय समाज के विकास और उसमें होने वाले परिवर्तनों की रूपरेखा में शिक्षा की जगह और उसकी भूमिका को भी निरंतर विकासशील पाते हैं। भारतीय शिक्षा का बीजारोपण सुदूर अतीत में आज से लगभग 4000 साल पहले हुआ था, किंतु उसके सुसंबंध स्वरूप के दर्शन वैदिक काल के आरंभ में होते हैं। प्राचीन भारत में जिस शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया गया था। वह समकालीन विश्व की शिक्षा व्यवस्था से समउन्नत व उत्कृष्ट थी। लेकिन कालांतर में भारतीय शिक्षा व्यवस्था का हास हुआ। विदेशियों ने यहां की शिक्षा व्यवस्था को उस अनुपात में विकसित नहीं किया। जिस अनुपात में होना चाहिए, अपने संक्रमण काल में भारतीय शिक्षा को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। आज भी यह चुनौतियां व समस्याएं हमारे सामने हैं। जिनसे दो-दो हाथ करना है।

1.1.2.1 प्राचीन काल में शिक्षा का विकास

भारत की प्राचीन कालीन शिक्षा आध्यात्मिकता पर आधारित थी। शिक्षा मुक्ति तथा आत्मबोध के साधन के रूप में थी। प्राचीन शिक्षा पद्धति में हमें अनौपचारिक तथा औपचारिक दोनों प्रकार के शैक्षणिक केंद्रों का उल्लेख मिलता है। औपचारिक शिक्षा मंदिर, आश्रमों और गुरुकुलों के माध्यम से दी जाती थी। ये ही उच्च शिक्षा के केंद्र थे। जबकि परिवार, पुरोहित, पंडित, संन्यासी और त्योहार प्रसंग आदि के माध्यम से अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त होती थी।

विभिन्न धर्म सूत्रों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि माता ही बच्चे की श्रेष्ठ गुरु है। कुछ विद्वानों ने पिता को बच्चे के शिक्षक के रूप में स्वीकार किया है। जैसे-जैसे सामाजिक विकास वैसे-वैसे शैक्षणिक संस्थाएं स्थापित होने लगी। वैदिक काल में परिषद, शाखा हुआ और चरण जैसे संघों का स्थापन हो गया था, लेकिन व्यवस्थित शिक्षण संस्थाएं सार्वजनिक तौर पर बौद्धों द्वारा स्थापित की गई।

प्राचीनकाल में शिक्षा को अधिक महत्व दिया जाता था। भारत विश्व कहलाता था। विभिन्न विद्वानों ने शिक्षा को प्रकाशस्रोत, अंतर्दृष्टि, अंतरज्योति, ज्ञानचक्षु और तीसरा नेत्र आदि उपमाओं से विभूषित किया। उस युग की मान्यता थी जिस प्रकार अंधकार को दर करने के लिए प्रकाश है, उसी प्रकार व्यक्ति के सभी संशयों और भ्रमों को दूर करने के लिए शिक्षा

है। प्राचीन भारत की शिक्षा का प्रारंभिक रूप हम ऋग्वेद में देखते हैं। ऋग्वेद युग की शिक्षा का उद्देश्य था तत्व साक्षात्कार। ब्रह्मचर्य, तप और योगाभ्यास से तत्व का साक्षात्कार करने वाले ऋषि, मुनि, कवि मनीषी के नामों से प्रसिद्ध थे।

विद्यालय गुरुकुल, आचार्यकुल, गुरुग्रह इत्यादि नामों से विदित थे। शिक्षक को आचार्य और गुरु कहा जाता था और विद्यार्थी को ब्रह्मचारी, व्रतधारी, अन्तेवासी और आचार्यकुल बासी आचार्य मंत्र का परायण करते थे और ब्रह्मचारी उनको उसी प्रकार दोहराते चले जाते थे। वैदिक काल में उच्च शिक्षा की व्यवस्था गुरुकुल में होती थी, 18 से 12 वर्ष की आयु में बच्चों का गुरुकुल में प्रवेश होता था। 8 वर्ष की आयु पर ब्राह्मण बच्चों का, 10 वर्ष की आयु में क्षत्रिय बच्चों का और 12 वर्ष की आय में वैश्य बच्चों का गुरुकुल में प्रवेश होता था। गुरुकुल में प्रवेश के समय बच्चों का उपनयन संस्कार होता था इस संस्कार के बाद उनकी उच्च शिक्षा प्रारम्भ होती थी। हमारे देश में वैदिक काल में जिस शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ, वह हमारी आधुनिक शिक्षा प्रणाली की नींव का पत्थर है। वैसे तो वैदिक शिक्षा प्रणाली के बाद हमारे देश में क्रमशः बौद्ध शिक्षा प्रणाली, मुस्लिम शिक्षा प्रणाली और अंग्रेशिक्षा प्रणाली का विकास तो हुआ परंतु वैदिक शिक्षा प्रणाली प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से निरंतर चलती रही और आज भी चल रही है।

आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के विकास में भी इसकी आधारभूत भूमिका है। वैदिक काल की भांति आज भी समस्त ज्ञान-विज्ञान, कौशल और तकनीकी को शिक्षा की पाठ्यचर्या सम्मिलित करते हैं। आज भी हम शिक्षक और शिक्षार्थीयों के बीच मधुर संबंध स्थापित करना चाहते हैं। आधुनिक काल की शिक्षा प्रणाली और बैदिक काल की शिक्षा प्रणाली में जो अंतर हैं वह तो विकास क्रम का ही प्रतिफल है।

1.1.2.2 मध्य काल में शिक्षा का विकास

भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना होते ही इस्लामी शिक्षा का प्रसार होने लगा। फारसी जानने वाले ही सरकारी कार्य के योग्य समझे जाने लगे। हिंदू अरबी और फारसी पढ़ने लगे। बादशाहों और अन्य शासकों के व्यक्तिगत रूचि के अनुसार इस्लामी आधार पर शिक्षा दी जाने लगी। इस्लाम के संरक्षण और प्रचार के लिए मस्जिदें बनाई गई साथ ही मकतब व मदरसों और पुस्तकालयों की स्थापना होने लगी। मकतब प्रारंभिक शिक्षा के केंद्र होते थे और मदरसे उच्च शिक्षा के मकतबों की शिक्षा धार्मिक होती थी। विद्यार्थी कुरान के कुछ अंशों को

कंठस्थ करते थे। इनमें हिंद बालक भी पढ़ते थे। मकतब में शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी मदरसों में प्रविष्ट होते थे। यहां प्रधानतः धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। साथ-साथ इतिहास, साहित्य, व्याकरण, तर्कशास्त्र, गणित, कानून आज की पढ़ाई होती थी सरकार शिक्षकों को नियुक्ति करती थी, कहीं-कहीं प्रभावशाली व्यक्तियों के द्वारा भी उनकी नियुक्ति होती थी।

इस काल में शिक्षा संस्थाओं का महत्वपूर्ण स्थान था। संपन्न परिवारों के घरों की बैठकों में परिवार व आसपास के शिशु प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। इस बैठक को मकतब कहते थे। इस मकतब के शिक्षक के भरण-पोषण का दायित्व उन परिवारों का होता था। जिन परिवारों के बच्चे वहां शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे।

वह भी उसकी आर्थिक सहायता करते थे। शिक्षा का दूसरा केंद्र मदरसा था। राज्य द्वारा स्थापित मदरसों को राज्य की ओर से वित्तीय सहायता मिलती थी। शिक्षा का तीसरा महत्वपूर्ण केंद्र सूफी संतों की खानकाह थी। अजमेर में शेख मोइनुद्दीन चिश्ती की खानकाह, दिल्ली में शेख निजामुद्दीन औलिया की खानकाह, और सीदी मौला की खानकाह आदि शिक्षा के सुप्रसिद्ध केंद्र थे। इस काल में प्रत्येक शहर में उपरोक्त तीन प्रकार की शिक्षण संस्थाएं थी।

मध्यकाल में राजकुमारों के लिए महल के भीतर शिक्षा का प्रबंध था। राज्य व्यवस्था, सैनिक संगठन, युद्ध संचालन, संघ इतिहास, व्याकरण, साहित्य, इतिहास, व्याकरण, कानून आदि का ज्ञान ग्रह शिक्षा से प्राप्त होता था। राजकुमारियां भी शिक्षा पाती थी। शिक्षकों का बड़ा सम्मान था। वह विद्वान और सच्चरित्र होते थे। छात्र और शिक्षकों को आपसी संबंध प्रेम और सम्मान का था। सादगी, सदाचार, विद्या प्रेम और धर्म आचरण और उदाहरणों द्वारा पाठ पढ़ाए जाते थे। धर्म आचरण पर जोर दिया जाता था, कंठस्थ करने की परंपरा थी। प्रश्नोत्तर व्याख्या और उदाहरण द्वारा पाठ पढ़ाए जाते थे। कोई परीक्षा नहीं थी। अध्ययन-अध्यापन में प्राप्त अवसरों में शिक्षक छात्रों की योग्यता और विद्वत्ता के विषय में तथ्य प्राप्त करते थे। दंड प्रयोग किया जाता था। जीविका उपार्जन के लिए भी शिक्षा दी जाती थी। दिल्ली , आगरा, जौनपुर, मालवा मुस्लिम शिक्षा के केंद्र थे। मुसलमान शासकों के संरक्षण के लिए आभाव में भी संस्कृत, काव्य, नाटक, व्याकरण, दर्शनग्रंथों की रचना और उनका पठन-पाठन बराबर होता रहा।

1.1.2.3 आधुनिक काल में शिक्षा

भारत में आधुनिक शिक्षा की नींव यूरोपीय ईसाई धर्म प्रचारक तथा व्यापारियों के हाथों से डाली गई। उन्होंने कई विश्वविद्यालय स्थापित किए। प्रारंभ में मद्रास ही उनका कार्यक्षेत्र रहा । धीरे-धीरे कार्यक्षेत्र का विस्तार बंगाल में भी होने लगा। इन विद्यालयों में ईसाई धर्म की शिक्षाके साथ-साथ इतिहास, भूगोल, व्याकरण, गणित, साहित्य आदि विषय भी पढ़ाए जाते थे रविवार को विद्यालय बंद रहता था। प्रायः 150 वर्षों के बीतते-बीतते ईस्ट इंडिया कंपनी राज करने लगी। विस्तार में बाधा पड़ने के डर से कंपनी शिक्षा के प्रति उदासीन रही, फिर भी विशेष कारण और उद्देश्य से 1780 में कोलकाता मदरसा' और 1791 बनारस में संस्कृत कॉलेज की स्थापना कंपनी द्वारा की गई। इसमें हिंदू उच्च शिक्षा और इंग्लैंड की उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम एक साथ चलाए गए। इसके बाद में 1800 में उन्होंने कोलकाता में केवल इंग्लैंड की उच्च शिक्षा प्रणाली पर आधारित फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। इस कॉलेज में अंग्रेभाषा एवं साहित्य और यूरोपीय ज्ञान के साथ-साथ भारतीय भाषाओं भारतीय इतिहास और हिंदू मुस्लिम कानून की भी शिक्षा दी जाती थी।

17 वी शताब्दी के प्रारंभ में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के साथ यहां की मिशनरियों ने भी अपना कार्य भारत में प्रारंभ किया । ऐसा माना जाता है कि ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रत्येक जहाज के साथ एक पादरी भारत में आता था ब्रिटेन के पश्चात फ्रांसीसी डच देशों के व्यापारियों तथा मिशनरियों के द्वारा अपना कार्य भारत में प्रारंभ किया गया । ईसाई धर्म के प्रचार प्रसार के लिए भी उन्होंने शिक्षा को माध्यम बनाया। प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की गई। मिशनरियों के द्वारा इसाई धर्म की शिक्षा देने के साथ-साथ आधुनिक यूरोपीय शिक्षा एवं भारतीय विषयों की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी।

1.1.2.4 ब्रिटिश शासन का शिक्षा पर प्रभाव

कंपनी ने प्रारंभ में व्यापारिक हितों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के प्रति उदासीन रही फिर भी विशेष कारण और उद्देश्यों से अपने कर्मचारियों उनके बच्चों तथा आसपास के निवासियों के लिए सीमित संख्या में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की। कंपनी अब अपने राज्य के भारतीयों को शिक्षा देने की आवश्यकता को समझने लगी थी। 1813 ई0 के आज्ञा पत्र के अनुसार शिक्षा में धन व्यय करने का निश्चय किया गया किस प्रकार की शिक्षा दी जाए? इसमें प्राच्य और पाश्चत्य शिक्षा के समर्थकों में मतभेद था। अंत में लार्ड मैकाले के

तर्क-वितर्क और राजा राममोहन राय के समर्थन से प्रभावित हो 1835 में लॉर्ड बैंटिक ने निश्चय किया कि अंग्रेभाषा और साहित्य और यूरोपीय इतिहास, विज्ञान इत्यादि की भी पढ़ाई हो, और इसी में 1813 का आज्ञा पत्र में अनुमोदित धन व्यय हो।

1853 में शिक्षा की प्रगति की जांच के लिए एक समिति बनाई गई। 1854 में बुड के शिक्षा संदेश पत्र में समिति के निर्णय कंपनी के पास भेजे । संस्कृत, अरबी और फारसी का ज्ञान आवश्यक समझा गया। प्राथमिक शिक्षा उपेक्षित ही रही। उच्च शिक्षा की उन्नति होती गई। 1857 में कोलकाता, मुंबई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित हुए। प्राथमिक शिक्षा की दशा की जांच करते हुए शिक्षा के प्रश्नों पर विचार करने के लिए 1882 में सर विलियम हंटर की अध्यक्षता में भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति की गयी।

सन 1858 में ईस्ट इंडिया कंपनी से ब्रिटिश संसद ने देश का शासन अपने हाथ में ले लिया। रानी विक्टोरिया की सरकार ने अपना पूरा ध्यान अपनी स्थिति मजबूत करने में लगाया, शिक्षा संबंधी कार्य पीछे छूट गए। इस समय तक देश के अनेक प्रांतों में हजारों प्राथमिक विद्यालय विभिन्न माध्यमों से स्थापित किए गए। कई स्थानों पर हाई स्कूल खोले गए. नए कालेजों की स्थापना की गई।

1.1.3 वर्तमान शिक्षा प्रणाली की समस्याएं

किसी भी राष्ट्र अथवा समाज में शिक्षा सामाजिक नियंत्रण, व्यक्तित्व निर्माण तथा सामाजिक व आर्थिक प्रगति का मापदंड होती है। भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली ब्रिटिश प्रतिरूप पर आधारित है जिसे सन् 1835 ई. में लागू किया गया।

सन् 1835 ई. में जब वर्तमान शिक्षा प्रणाली की नींव रखी गई थी तब लार्ड मैकाले ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि अंग्रेशिक्षा का उद्देश्य भारत में प्रशासन के लिए बिचौलियों की भूमिका निभाने तथा सरकारी कार्य के लिए भारत के विशिष्ट लोगों को तैयार करना है।इसके फलस्वरूप एक सदी तक अंग्रेशिक्षा के प्रयोग में लाने के बाद भी 1935 ई. में भारत की साक्षरता दस प्रतिशत के आँकड़े को भी पार नहीं कर पाई। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की साक्षरता मात्र 13 प्रतिशत ही थी। इस शिक्षा प्रणाली ने उच्च वर्गों को भारत के शेष समाज में पृथक् रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ब्रिटिश समाज में बीसवीं सदी तक यह मानना था कि श्रमिक वर्ग के बच्चों को शिक्षित करने का तात्पर्य है उन्हें जीवन में अपने कार्य के लिए

अयोग्य बना देना। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ने निर्धन परिवारों के बच्चों के लिए भी इसी नीति का अनुपालन किया।

लगभग पिछले दो सौ वर्षों की भारतीय शिक्षा प्रणाली के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह शिक्षा नगर तथा उच्च वर्ग केंद्रित, श्रम तथा बौदधिक कार्यों से रहित थी। इसकी बुराइयों को सर्वप्रथम गाँधी ने 1917 ई० में गुजरात एजुकेशन सोसायटी के सम्मेलन में उजागर किया तथा शिक्षा में मातृभाषा के स्थान और हिंदी के पक्ष को राष्ट्रीय स्तर पर तार्किक ढंग से रखा। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में शांति निकेतन, काशी विद्यापीठ आदि विदयालयों में शिक्षा के प्रयोग को प्राथमिकता दी गई।

सन् 1944 ई. में देश में शिक्षा कानून पारित किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत हमारे संविधान निर्माताओं तथा नीति-नियामकों ने राष्ट्र के पुनर्निर्माण, सामाजिक-आर्थिक विकास आदि क्षेत्रों में शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया। इस मत की पुष्टि हमें राधाकृष्ण समिति (1949), कोठारी शिक्षा आयोग (1966) तथा नई शिक्षा नीति (1986) से मिलती है शिक्षा के महत्व को समझते हुए भारतीय संविधान ने अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए शिक्षण संस्थाओं व विभिन्न सरकारी अनुष्ठानों आदि में आरक्षण की व्यवस्था की। पिछड़ी जातियों को भी इन सुविधाओं के अंतर्गत लाने का प्रयास किया गया। स्वतंत्रता के बाद हमारी साक्षरता दर तथा शिक्षा संस्थाओं की संख्या में नि:संदेह वृद्धि हुई है परंतु अब भी 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या निरक्षर है।

दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि स्वतंत्रता के बाद विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा व प्राविधिक शिक्षा का स्तर तो बढ़ा है परंतु प्राथमिक शिक्षा का आधार दुर्बल होता चला गया शिक्षा का लक्ष्य राष्ट्रीयता, चरित्र निर्माण व मानव संसाधन विकास के स्थान पर मशीनीकरण रहा जिससे चिकित्सकीय तथा उच्च संस्थानों से उत्तीर्ण छात्रों में लगभग 40 प्रतिशत से भी अधिक छात्रों का देश से बाहर पलायन जारी रहा।

देश में प्रौढ़ शिक्षा और साक्षरता के नाम पर लूट-खसोट, प्राथमिक शिक्षा का दर्बल आधार, उच्च शिक्षण संस्थानों का अपनी सशक्त भूमिका से अलग हटना तथा अध्यापकों का पेशेवर दृष्टिकोण वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिए एक नया संकट उत्पन्न कर रहा है पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के नए चेहरे, निजीकरण तथा उदारीकरण की विचारधारा से शिक्षा को

भी 'उत्पाद' की दृष्टि से देखा जाने लगा है जिसे बाजार में खरीदा-बेचा जाता है। इसके अतिरिक्त उदारीकरण के नाम पर राज्य भी अपने दायित्वों से विमुख हो रहे हैं।

इस प्रकार सामाजिक संरचना से वर्तमान शिक्षा प्रणाली के संबंधों, पाठ्यक्रमों का गहन विश्लेषण तथा इसकी मूलभूत दुर्बलताओं का गंभीर रूप से विश्लेषण की चेष्टा न होने के कारण भारत की वर्तमान

शिक्षा प्रणाली आज भी संकटों के चक्रव्यूह में घिरी हुई है। प्रत्येक दस वर्षों में पाठ्य-पुस्तकें बदल दी जाती हैं लेकिन शिक्षा का मूलभूत स्वरूप परिवर्तित कर इसे रोजगारोन्मुखी बनाने की आवश्यकता है।

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली गैर-तकनीकी छात्र-छात्राओं की एक ऐसी फौज तैयार कर रही है जो अंततोगत्वा अपने परिवार व समाज पर बोझ बन कर रह जाती है। अतः शिक्षा को राष्ट्र निर्माण व चरित्र निर्माण से जोड़ने की नितांत आवश्यकता है।

1.1.3.1 शिक्षा का व्यवसायीकरण

शिक्षा के बिना मानव पशु के समान है, क्योंकि शिक्षा ही सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में सहायक होती है। आजकल शहरों में तो क्या गांव में भी शिक्षा का व्यवसायीकरण हो गया है। सरकारी स्कूलों में केवल निर्धन वर्ग के बच्चे ही पढ़ने के लिए आते हैं। क्योंकि निसंस्थाओं में फीस के रूप में बड़ी रकम वसूली जाती है। जिसे केवल पैसे वाले ही अदा कर पाते हैं। आज अच्छी और उच्च शिक्षा का व्यवसायीकरण हो रहा है। निशिक्षण संस्थानों के संचालक मनमानी फीस वसूल कर रहा है। या यूं कहें शिक्षा का बाजार लगाकर लूट मचा रखा है। जहां एक ओर शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है, वहीं दूसरी तरफ फीस बढती जा रही है। आज के दौर में बढ़ती फीस के कारण मनपसंद स्कूल में प्रवेश लेना ही अपने आज बड़ी चुनौती है। फीस न होने के कारण कुछ लोग अपने बच्चों को स्कूल भेजने में भी असमर्थ हैं। इसके साथ ही किताबें, वर्दी आदि खर्चे भी बहुत हो गए हैं। स्कूल का व्यवसाय इतना लाभदेय हो गया है कि स्कूल वालों ने पुस्तक और ड्रेस का व्यापार करना भी शुरू कर दिया है।

आज एक से बढ़कर एक शिक्षण संस्थान नित जन्म ले रहे हैं। जहां सिर्फ अमीर वर्ग के लोग ही शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। संपन्नता और व्यवसायिकता कि इस अंधी दौड़ में शिक्षा रूपी व्यवसाय तो जरूर फल-फूल रहा है पर शिक्षा का मूल उद्देश खत्म हो गया है।

1.1.3.2 शिक्षा का राजनीतिकरण

आजकल स्कूल में जो शिक्षा दी जा रही है, वह वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में कहां तक उचित है, इस पर राजनीतिक प्रभाव कितने पड़ रहे हैं? क्या इन राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण बालकोंका अहित नहीं हो रहा है? इनके भविष्य निर्माण में बाधक नहीं हो रहा है, ऐसे अनेक प्रश्न हैं, जो अनुत्तरित हैं। हमारे देश में लोकतंत्र है, जो भी सत्ताधारी पार्टियां आती हैं, वह शिक्षा में दखल देती हैं। अपनी वोटिंग उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उसके अनुरूप पाठ्यक्रम बदल देती हैं। जिसका राष्ट्र निर्माण में कोई योगदान नहीं होता। आज पाठ्यक्रम में देशप्रेम की भावना जगाने वाली कविताओं की जगह नहीं मिलती है। पहले की तुलना में अध्यापकों को भी अन्य कामों में व्यस्त कर दिया गया है, जिससे वह उन्हीं कामों में उलझा रहता है।

पढ़ाने के काम को सरकार व अध्यापकों ने दोयम दर्जे का काम मान लिया है। कुल मिलाकर इन सब से शिक्षा का स्तर गिर रहा है। इसका स्तर उठाना है। बालकों को संस्कारी बनाना है. तो शिक्षा का राजनीतिकरण रोकना होगा । इसे स्वायत्त संस्था बनाना होगा, जिसमें किसी का हस्तक्षेप ना हो यही बालकों के व देश के हित में होगा।

1.1.3.3 शिक्षण व्यवस्था में क्षरण को पश्चिमी पद्धति जिम्मेदार

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था क्षरण कि ओर है। इसके लिए केवल छात्र ही नहीं अभिभावक व शिक्षक भी जिम्मेदार है। पुरातन गुरु-शिष्य परंपरा हमारी देशी शिक्षा पद्धति थी। जिसमें छात्र अनुशासन में बंधकर गुरु का सम्मान करते थे, तथा शिक्षा पाते थे परन्तु अब ऐसी स्थिति नही है, शिक्षा का बाजारीकरण हो गया है। जिस कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली क्षरण की ओर है, छात्र को शिक्षक का डर नही है, अभिभावक भी इस बात पर ध्यान नही देते हैं अभिभावक बच्चों को शिक्षकों के पास भेजते तो है पर जानने का प्रयास नही करते कि हमारा पुत्र या पुत्री पढ़ाई कर रहा है या नहीं। वर्तमान में शिक्षक छात्र संबंधों में कमी आई है,यह एक औपचारिकता के स्तर पर आ गया है। छात्रों में सम्मान देने की भावना में कमी आई है। इसमें छात्र ही दोषी नहीं बहुत हद तक शिक्षक भी जिम्मेदार है, देखने में आ रहा है कि बहुत जगह शिक्षक इस सम्मान का गलत फायदा उठाते हैं। पूर्व में गुरु शिष्य सम्बन्ध

निःस्वार्थ था वर्तमान में यह स्वार्थपरक हो गया है। पैसा कमाने की सारी हदें शिक्षक पार कर चुके हैं जिस कारण यह क्षरण देखने को मिल रहा है। समय आ गया है कि अभिभावक, गुरू,छात्र चिन्तन करें। दूसरे पाश्चात्य शिक्षा पद्धति भी इस क्षरण के लिए जिम्मेदार है। इसे पुरनप्रतिष्ठापित करने के लिए एक प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करना पड़ेगा। प्राचीन गुरू-शिष्य परंपरा के टूटने से वर्तमान में शिक्षा की यह दुर्गति हुई है। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति ने हमारी संस्कृति पर घात किया है । इस पर हम सभी को गहन चिन्तन के साथ राजनयिक को भी गंभीरता से शिक्षा व्यवस्था में बदलाव करना होगा।वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में क्षरण के ढेर सारे कारण है। सरकागी शिक्षा व्यवस्था का m होने के साथ ही निकोचिंग क्लासेज व निस्कूल का उदय का कारण बना। सरकारी विद्यालयों में न तो मजबूत आधारभूत संरचना है न ही योग्य शिक्षक जिस काग्ण शिक्षा का बाजागकरण होते चला गया जो अब चरम पर है। इस समानांतर शिक्षा प्रणाली में पैसा कमाना भव्य ध्येय रह गया है। जिस कारण छात्र पढ़े या नहीं पढ़े पैसा आना चाहिए हॉबी हो गया है। जिस हमें सधारने के लिए कड़ी मेहनत की आवश्यकता है। हम जब से अपनी शिक्षा पद्धति में पश्चिमी प्रणाली को लाए हैं। शिक्षक छात्र के बीच सम्मान देने की खाई बढ़ी है। पहले जहां प्रणाम का स्थान था अब गुड मॉर्निंग व गुड इवनिंग पर आ गया है। इसमें आप शिक्षा में किस प्रकार की आशा कर सकते हैं। हमें सबसे पहले प्राथमिक स्तर की शिक्षा पर खास ध्यान देना होगा। इसे संस्कृति से जोड़ना होगा। तभी आप देसी संस्कृति वाली शिक्षा की कल्पना कर सकते हैं।

1.1.3.4 शिक्षा की उपेक्षा

शिक्षा किसी भी प्रदेश के विकास की रीढ़ होती है। इसमें भी प्राथमिक शिक्षा तो भवन की नींव की तरह है। यदि नींव ही कमजोर हो गई तो मजबूत भवन की उम्मीद बेमानी हो जाती है। दर्भाग्य से पंजाब के तमाम सरकारी स्कूलों में ऐसा ही हो रहा है। स्कूलों में आधारभूत ढांचे से लेकर अध्यापकों तक का अभाव है। एक अध्यापक पांच-पांच कक्षाएं संभाल रहे हैं। ऐसी स्थिति के कारण ही अभिभावक सरकारी स्कूलों में अपने बच्चों का दाखिला करवाने से परहेज करते हैं और प्राइवेट स्कूलों को प्राथमिकता देते हैं। सरकारी स्कूलों की दयनीय स्थिति के कारण ही गली-गली में प्राइवेट स्कूल खुल गए हैं। तमाम प्राइवेट स्कूलों ने शिक्षा को व्यवसाय बना लिया है और अभिभावकों का भरपूर शोषण कर रहे हैं। होशियारपुर के गांव कितना के सरकारी स्कूल की बात करें तो यहां चार वर्षों से कोई अध्यापक है ही नहीं। ऐसी खबरें हैगन करती हैं, साथ ही सरकार व शिक्षा विभाग के आला

अधिकारियों की कार्यप्रणाली पर सवालिया निशान भी लगाती हैं। यह स्थिति देश के संपन्न राज्यों में शुमार पंजाब की हो तो और आश्चर्य होता है। आखिर सरकार को स्कूलों में अध्यापक की व्यवस्था करने के लिए कितना वक्त चाहिए। क्या सरकार इतनी लाचार है कि चार सालो में स्कूल में अध्यापक भी नहीं नियुक्त नहीं कर सकती। गांव कितना के स्कूल में एक अध्यापिका है भी तो वह तीन साल में तीसरी बार विदेश गई है। यहां बच्चों को पढ़ाने के लिए एक एनआरआइ ने अपने स्तर पर वेतन देकर दो अध्यापिका की व्यवस्था की है। ऐसी स्थिति में यह तो तय है कि वहां पढ़ने वाले बच्चोंका भविष्य प्रभावित होगा ही। करीब पांच साल पहले केंद्र सरकार ने शिक्षा का अधिकार कानून बनाया था। इसका मकसद यही था कि हर बच्चे को शिक्षा मिले क्योंकि यह उसका अधिकार है। लेकिन सिर्फ कानून बन जाने से बात नहीं बनती। यह तो सरकारों को देखना होगा कि कानून के मुताबिक काम हो रहा है या नहीं। पंजाब सरकार को तत्काल ऐसे स्कूलों की पहचान कर वहां अध्यापकों की व्यवस्था करनी चाहिए और बार-बार विदेश जाने वाले अध्यापकों से सख्ती से पेश आना चाहिए क्योंकि शिक्षा की उपेक्षा देश के भविष्य से खिलवाड़ करने जैसा है।

1.1.3.5 भारतीय संस्कृति की उपेक्षा

शिक्षा की संस्था सभ्य समाज की एक जरूरी संस्था का स्थान ले चुकी है। अत: शिक्षा किसलिए हो या उसका क्या उद्देश्य हो, यह प्रश्न समाज और व्यक्ति के जीवन के संदर्भ में उठना स्वाभाविक है। देश में आजकल यह बात आम होने लगी है कि हमारी शिक्षा अपने परिवेश संस्कृति से कटती जा रही है। जिस समाज या संस्कृति से शिक्षा का पोषण होता है और जिसके लिए वह प्रासंगिक होनी चाहिए वह एक दुःस्वप्न सरीखी होती जा रही है। इन सबके बीच जो पढ़-लिख जाता है वह मानो एक बड़ी यांत्रिक व्यवस्था के उपकरण के रूप में ढल जाता है। प्रतिस्पर्धा की दुनिया में उसका उद्देश्य सफलता, उपलब्धि और भौतिक प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ने तक सीमित हो रहा है। इस तरह यह शिक्षार्थी के मानस को संकुचित बनाने का काम कर रही है। एक ओर तो विश्वस्तरीय शिक्षा देने का संकल्प लिया जाता है तो दसरी ओर सर्वत्र एक ही ढर्रे पर पढ़ाई करने की कवायद भी जारी है।

आज प्रचलित शिक्षा मनुष्य को स्वचालित रोबोट बनाने पर जोर देती है। इस शिक्षा से निकलने वाले होनहार युवाओं की स्थिति विचित्र हो रही है। जिस सीढ़ी के सहारे चढ़कर वे ऊपर पहुंचते हैं उस सीढ़ी से बेझिझक अलग हो जाते हैं। वे उस भूमि से अलग हो जाते हैं जिसने जीवन दिया। यह शिक्षा सांस्कृतिक विचार, विश्वास, सहयोग, सहनशीलता

आदि की कीमत पर दी जा रही है। लिहाजा उनमें सामाजिक सृजनात्मकता और निलाभ के आगे किसी तरह की सामाजिक सकारात्मकता विरल होती जा रही है। यदि हम स्कूली शिक्षा को लें जो शिक्षा का प्रवेश द्वार हैं, तो पाते हैं कि भारत में पहले कई तरह के विद्यालय चलते रहे हैं। यहां प्राचीन काल में गुरुकुल, पाठशाला और मदरसा मौजूद थे। यहां आने के बाद अंग्रेज अधिकारियों ने प्रारंभिक शिक्षा के संबंध में जो रपटें लिखीं वे आश्चर्यजनक रूप से इसकी अच्छी स्थिति प्रदर्शितकरती हैं। उनकी नजरों में तब यहां की शिक्षा संस्कृति से जुड़ी थी। बाद के दिनों में कोठारी शिक्षा आयोग द्वारा संस्कृति पर ध्यान देने की बात की गई थी। उसने इस बात पर जोर दिया था कि कार्यक्षेत्र, शिक्षा, घर परिवार, व्यक्ति और समाज के बीच कोई द्वंद्र नहीं होना चाहिए।

महात्मा गांधी ने भी नई तालीम' का विचार दिया था जिसमें शरीर, हाथ, बुद्धि सबका सतलन होता है और इसके लिए उन्होंने स्थानीय संसाधन के उपयोग का सुझाव दिया था। इसमें निरी बौद्धिकता पर अतिरिक्त बल न देकर शरीर, मन, आत्मा सब पर ध्यान देने की बात कही गई। इसके अंतर्गत स्वावलंबन, देशभक्ति, आत्म-संपन्नता और संयम जैसे जीवन मूल्यों पर बल देना प्रस्तावित है। प्राथमिक शिक्षा से मोहभंग के साथ कई विकल्पों पर काम शुरू हुआ। गुरुदेव रवींद्रनाथ ने शांतिनिकेतन के पास श्रीनिकेतन बनाया था। रुक्मिणी देवी अरुंडेल, एनी बेसेंट और जे कृष्णमूर्ति ने भी अलग-अलग प्रयास किए। इन सब प्रयासों में जीवन कौशल और कला पर बल दिया गया ताकि छात्रों को आस-पास की दुनिया से जुड़ने का भी अवसर मिले। उनका मानना था कि समग्र व्यक्तित्व के विकास के लिए प्राचीन और नए हनर भी आने चाहिए जो संस्कृति विशिष्ट होते हैं।

शिक्षा के मूल्य की अभिव्यक्ति मूर्त और अमूर्त, दोनों माध्यमों से होती है। समाज और समुदाय व्यक्ति से ऊपर होते हैं। भारत की समृद्ध वाचिक परंपरा बड़ी प्राचीन है। आज जो शिक्षा (मस्तिष्क!) विदेश से लाकर देश में प्रत्यारोपित की जा रही है वह एक हद तक भारतीय मूल्यों को जड़ से विस्थापित कर रही है। आर्थिक संपन्नता से सांस्कृतिक विपन्नता की भरपाई नहीं हो सकती। नैतिक मूल्यों का अभाव, तनाव, द्वंद्व, हिंसा और असहनशीलता तो किसी भी तरह ग्राह्य नहीं है। मनुष्यता के विकास के लिए संस्कृति आधारित शिक्षा के अतिरिक्त और कोई साधन उपलब्ध नहीं है।

भारतीय संस्कृति की दृष्टि में अच्छी दुनिया वह है जिसमें बहलता, पारस्परिकता और सह अस्तित्व हों, पर हम इसे छोड़कर अंग्रेपर अधिकार करने चले और उसी ने हम पर

अधिकार जमा लिया। सांस्कृतिक क्षति के चलते हम बोलने और सोचने को लेकर विभाजित व्यक्तित्व वाले होते जा रहे हैं। अर्थात बाहर से ग्रहण किया या लिया, पर अंदर जो मौजूद है वह गया भी नहीं। अब द्वंद्व और दुविधा के साथ किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं। औपनिवेशिक शक्तियों की भाषा हमारे माध्यम हो गई है। धर्म, भाषा, पशु, पक्षी, प्रतिमा, पुरातत्व, कला, राजनीति और अर्थशास्त्र आदि के क्षेत्रों में भारतीय अपनी शिक्षा से अपरिचित होते जा रहे हैं।हमें अपनी संस्कृति की भी चिंता नहीं है। विद्यालयों में प्रक्रिया के स्तर पर अध्यापक और सहपाठी के साथ सहयोग कैसे स्थापित किया जाए यह आज की कठिन चुनौती बन गई है। आज शिक्षा एक खास तरह का व्यापार बनती जा रही है। विद्यालयों के साथ समाज का रिश्ता नहीं बन रहा है और जन भागीदारी बहुत सीमित हो गई है। आधुनिकता और यहां की प्राचीन ज्ञान परंपरा के बीच आज तक सामंजस्य नहीं बन पाया है। सूचना-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति तो हो रही है, पर इन सबके बीच इंसान खो गया है।

आज बुद्ध, महावीर, ईसा, महात्मा गांधी के विचार कहां हैं? हम किधर जा रहे हैं? आज यह विचारणीय सवाल है। हमें भौतिकता के मिथक तोड़ने होंगे । मशीनीकरण की होड़ से बचना होगा। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में स्थित सामाजिक चेतना, ब्रह्मांडीय चेतना ही आधुनिक आत्मकेंद्रित उपभोक्तावाद की समस्या का समाधान कर सकती है। अहं का प्रकृति पर विजय की जगह प्रकृति और समाज के बीच संबंध स्थापित करने से ही स्वराज, स्वदेशी और सर्वोदय के विचार जीवित होंगे। शांति की संस्कृति का विकास नैतिक अनुशासन से ही आ सकेगा। और तभी बच्चे में श्रेष्ठ का आविष्कार करने की ललक और स्वावलंबी जीवन व्यतीत करने की इच्छा पनप सकेगी। तभी पूर्ण सामाजिक विकास और धार्मिक समानता भी आ पाएगी।

दरअसल विचारों का विकास और उनकी समाज में उपस्थिति के कई आधार होते हैं। प्राय: माना जाता है कि आधुनिकता का विचार पश्चिम से भारत की ओर आगे बढ़ा। यहां की अपनी आधुनिकता को औपनिवेशिक आधुनिकता ने नकारात्मक ढंग से प्रभावित किया। यहां एक तरह की संकर या मिश्रित आधुनिकता का आरंभ हुआ। यहां की आधुनिकता पश्चिमी आधुनिकता से जटिल रूप में जुड़ी और फिर शिक्षा का सांस्कृतिक विमर्श भी बाधित हुआ। जाहिर है शिक्षा का प्रयोजन भविष्य के लिए तैयारी और नियोजन से जुड़ा है। इसलिए इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसे में जरूरी है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में समय के साथ आ गई इन खामियों को दूर किया जाए।

1.1.4 शिक्षा और संस्कृति

शिक्षा एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कार्य और विचार की नई पद्धतियां सीखते रहते हैं। उसे व्यवहार में ऐसे बदलाव लाने को बढ़ावा मिलता है, जिससे मनुष्य की स्थिति में सुधार आए। छात्रों में एक सामाजिक भाव की संस्कृति पनपने में शिक्षा एकमहत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षण संस्थान ज्ञान के मंदिर हैं, मंदिर इसलिए कि ज्ञान से पवित्र सृष्टि में और कुछ है ही नहीं,

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।"

संस्कृति किसी समाज की पहचान होती है यह उसके रहन-सहन एवं खान- पान की विधियों व्यवहार प्रतिमानो, रीति-रिवाज, कला-कौशल, संगीत नृत्य, भाषा-साहित्य, धर्म दर्शन, आदर्श-विश्वास और मूल्यों के विशिष्ट रूप में जीवित रहती है। तब किसी समाज की शिक्षा पर उसकी संस्कृति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। जिस समाज की संस्कृति आध्यात्म प्रधान होती है उस समाज में शिक्षा स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की प्राप्ति की ओर अधिक झुकी हुई होती है और जिस समाज की संस्कृति भौतिकवादी होती है उसकी शिक्षा प्रतियोगिता पर आधारित होती है और शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्ति का श्रम भौतिक उद्देश्य की प्राप्ति की और नियोजित होता है दूसरी ओर कोई समाज शिक्षा के माध्यम से ही अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखता है उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमित करता है और उसमें परिवर्तन एवं विकास करता है।

संस्कृति और शिक्षा का गहरा संबंध होता है। यह एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । एक के अभाव में दूसरे के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है । शिक्षा और संस्कृति में चोली और दामन जैसा संबंध है शिक्षा के साथ सांस्कृतिक मूल्यों की सुरक्षा की जाए तो शिक्षा जीवन निर्माण में उपयोगी बन सकती है।

1.1.4.1 शिक्षा में संस्कृति का महत्व

भारतीय परिवेश में जब हम शिक्षा की बात करते हैं तो भारत में "विद्या जीवन का अत्यंत महत्वपूर्ण वस्तुतः मूलभूत साधन थी परंतु वह साधन ही रहे साथ कभी नहीं बनी।" जिससे केवल भारतीय शिक्षा व्यवस्था में ही नहीं बल्कि समाज व्यवस्था में भी कई त्रुटियां रही हैं जिसका परिणाम हमें संस्कृति पर भी दिखाई पड़ता है। आज शिक्षा में संस्कृति को जोड़

कर देखा जाए तो मानव की प्रवृतियां संस्कार से असंस्कार की ओर बढ़ रहीं हैं इसका एकमात्र कारण है आधुनिक विज्ञान, राजनीति और संस्कृति में सामंजस्य का अभावा शिक्षा संस्थाओं का व्यवसायीकरण हो चुका है और ज्ञान का माध्यम केवल एक ही भाषा को माना जा रहा है इसके विपरीत परिणाम भी समाज को झेलने पड़ रहे हैं भारतीय आधुनिक जगत में जो समस्याएंसामने आ रही हैं उनमें हमारी शिक्षा व्यवस्था नवीन तरुण होती संस्कृति और सामाजिक विषमता ही एक में कारण है जिसके लिए किसी एक को दोषी मानना पूर्णता गलत होगा।

1.1.4.2 शिक्षा और संस्कृति का अंतर्संबंध

संस्कृति तथा शिक्षा मानव जीवन के दो जीवंत पहलू हैं। संस्कृति परिष्कृत परिवेश तथा व्यवस्था प्रदान करती है जबकि शिक्षा मानव का विकास करती है। यदि व्यक्ति का सही ढंग से विकास नहीं होगा तब वह संस्कृति के अवयवों को सही परिप्रेक्ष्य में ग्रहण नहीं कर सकता है। व्यक्ति को अपनी संस्कृति का ज्ञान शिक्षा से ही होता है एवं दूसरे शब्दों में शिक्षा को संस्कृति का संवाहक कहा जा सकता है। शिक्षा और संस्कृति में सदैव अटूट सम्बन्ध रहता है। इसी कारण व्यक्ति का सांस्कृतिक विकास करना भी शिक्षा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण उद्देश्य माना गया है। वस्तुत: संस्कृति तथा शिक्षा एक-दूसरे के पूरक हैं एवं दोनों का समन्वय होने पर ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास संभव होता है।

शिक्षा और संस्कृति की बात की जाए तो शिक्षा और संस्कृति में ऐसा गहरा संबंध है जैसे चोली और दामन का होता है। उनका एक दूसरे के बिना संपूर्ण होना कभी संभव नहीं है। जैसे कोई व्यक्ति शिक्षा के बिना नहीं रह सकता उसी प्रकार वह शिक्षा के सांस्कृतिक नियमों से परिपूर्ण हुए बिना संपूर्ण नहीं माना जाएगा। व्यक्ति का अधिकतर समय समाज में ही गुजरता है वह समाज में रहकर समाज में घटित घटनाओं के माध्यम से नित नवीन हर रोज सीखता है। इस प्रक्रिया के दौरान भी वह शिक्षा द्वारा बनाए गए सांस्कृतिक नियमों का पालन बराबर करता रहता है क्योंकि “सांस्कृतिक मानव की सामुदायिक सौंदर्य मूलांक उपलब्धि है संस्कृति के तत्वों से शिक्षा का स्वरूप किसी समुदाय में बनता है जहां संस्कृति एक समुदाय की पीढियों से परिष्कृत विकसित जीवन शैली है वहां संस्कृति उसे परिष्कृत विकसित करने में सहायक नहीं अपरिहार्य अंग है।"

संस्कृति मनुष्य की बौद्धिक और नैतिक अवधारणाओं को प्रमाणित ही नहीं करती हैं उनका निर्माण भी करते हैं लेकिन यह सब कह कर हम विज्ञान की महत्ता को अस्वीकार नहीं कर सकते यह सब करने की क्षमता उसमें भी उतनी ही है इस प्रक्रिया में शिक्षा और संस्कृति का जो अंतर्संबंध बनता है वह महत्वपूर्ण है।संस्कृति उनके सीखने के स्वभाव को निर्धारित करती है बहुत हद तक उसके इस स्वभाव से निर्धारित होता है कि बच्चा क्या सीखेगा और किन बातों को सीखना उसके लिए आसान होगा।"

शिक्षा जीवन का अनमोल उपहार है और संस्कृति जीवन का सार है इन दोनों के बिना समाज में सब कुछ बेकार है शिक्षा व्यक्ति के जीवन को ना केवल दिशा देती है वरन दशा भी बदल देती है।

1.1.5 धर्म और शिक्षा

धर्म और शिक्षा का गहरा संबंध है। एक सच्ची शिक्षा प्रणाली मनुष्य में उन्हीं आदर्शों तथा मूल्यों को विकसित करती है। जो संसार के समस्त धर्मों की प्रमुख दार्शनिक विचारधाराओं पर आधारित होते हैं। धर्म और शिक्षा का संबंध इसलिए भी है, कि शिक्षा का संबंध संस्कृति से है, और संस्कृति धर्म का एक महत्वपूर्ण अंग है। जो कि संस्कृति को पाठ्यक्रम में अवश्य स्थान दिया जाता है। इसलिए धर्म भी पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग है।

धर्म मानव में सहनशीलता तथा नम्रता आदि गुणों को विकसित करता है। इन गुणों के द्वारा शिक्षा जनतंत्र के आदर्श को सरलता पूर्वक प्राप्त कर सकती है।

डॉ राधाकृष्णन ने वर्तमान युग में धार्मिक शिक्षा पर बल देते हुए कहा है कि. "यदि हम केवल औद्योगिक तथा व्यवसायिक शिक्षा पर बल देकर आध्यात्मिक शिक्षा की उपेक्षा करेंगे तो सामाजिक बर्बरता तथा राक्षस राज के आने में कोई कसर न रह जाएगी।"

उन्होंने आगे लिखा है भारतीय परंपरा के अनुसार शिक्षा के बल जीविका कमाने का ही साधन नहीं है और ना ही यह विचारों की पाठशाला तथा नागरिकता का स्कूल है। यह मानवीय आत्माओं को सत्य की खोज तथा गुणों को विकसित करने का प्रशिक्षण है। यह द्वितीय जन्म है।

1.1.5.1 धर्म और शिक्षा एक दूसरे के पूरक

धर्म और शिक्षा का संबंध अत्यंत घनिष्ठ और प्राचीन है। प्राचीन भारत में शिक्षा धर्म पर आधारित थी। यूरोप में भी यही स्थिति रही है। धर्म व शिक्षा परंपरा पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। शिक्षा धर्म द्वारा ही नैतिक और आध्यात्मिक आदर्श प्राप्त करती है। शिक्षा बालक काचौमुखी विकास करती है। धर्म मानव में नैतिक, चारित्रिक एवं अध्यात्मिक विकास लाता है। अतः धर्म और शिक्षा दोनों ही बालकों के विकास में संलग्न है। भारतीय दर्शन में धर्म के 10 लक्षण बताए गए हैं। शिक्षा धर्म के बताए गए 10 लक्षणों पर बल देकर बालक को शिक्षित करती है। अतः धर्म और शिक्षा परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों का एक ही उद्देश्य है, मानव का सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास।

1.1.5.2. प्राचीन काल में धर्म के अधीन शिक्षा

भारत के प्राचीन शिक्षा आध्यात्मिक पर आधारित थी। शिक्षा मुक्ति एवं आत्मबोध के साधन के रूप में थी। यह व्यक्ति के लिए नहीं बल्कि धर्म के लिए थी। भारत की शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विरासत परंपरा विश्व इतिहास में प्राचीनतम है। इस युग कि यह मानता थी कि जिस प्रकार अंधकार को दूर करने का साधन प्रकाश है। उसी प्रकार व्यक्ति के संशय और भ्रम को दूर करने का साधन शिक्षा है। प्राचीन काल में शिक्षा में धर्म का अधिक महत्व था। ऋग्वेद युग की धर्म का उद्देश्य था कि तत्व साक्षात्कार ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास से तत्व का साक्षात्कार करने वाले विप्र, वैधस, मुनी, मनीषी के नामों से सुप्रसिद्ध थे। विद्यालय गुरुकुल, आचार्य कुल, ग्रह कुल आदि नामों से विदित थे। प्राचीन काल में धर्म के नियमानुसार शिक्षा दी जाती थी। आचार्य धर्म, बुद्धि से निशुल्क शिक्षा देते थे वेदों का अध्ययन श्रावण की पूर्णिमा को उपाकर्म से प्रारंभ होकर पौष की पूर्णिमा को समाप्त होता था। शेष महीनों में अधीत पाठों को आवृत्ति, पुनरावृति होती रहती थी। इस प्रकार प्राचीन काल में शिक्षा में धर्म का महत्व अधिक था तथा शिक्षा धर्म के अनुसार ही प्रदान की जाती थी।

1.1.5.3. शिक्षा का धर्म से विमुखीकरण

प्राचीन काल में शिक्षा और धर्म का नजदीकी संबंध था। शिक्षा की शुरुआत धर्म के आधार पर हुई थी। शिक्षा धर्म के अधीन थी। धर्म का महत्व अधिक था। धर्म गुरुओं द्वारा शिक्षा की प्राप्त विद्यार्थियों को होती थी। धार्मिक शिक्षा के कारण समाज में नैतिकता व्याप्त

थी। लेकिन जैसे-जैसे विज्ञान युग की के शुरुआत साथ-साथ हम आधुनिकता की ओर बढ़े तो धार्मिक कल्पनाओं को झूठा साबित करने लगे और आस्था-अनास्था में बदलने लगी। शिक्षा का स्तर भी बदलने लगा। शिक्षा का माध्यम तथा सोच धीरे-धीरे बदलने लगी। शिक्षा से नैतिकता, धर्म और मूल्य परकता का ह्रास होने लगा। शिक्षा अब केवल आर्थिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हो गई थी। धर्म और नैतिकता से शिक्षा का संबंध धीरे-धीरे कम होने लगा। नैतिक विचार, धार्मिकमान्यताओं का लोप होता चला गया और शिक्षा का उद्देश्य केवल जीविकोपार्जन था। कालांतर में शिक्षा का व्यवसायीकरण होने लगा। समय-समय पर पुनः वही संस्कृति और नैतिकता की शिक्षा में पुनः स्थापित करने में अनेक महापुरुषों ने योगदान दिया। जिनमें कई धर्मगुरु समाज सुधारक आदि शामिल हैं।

1.1.5.4. शिक्षा में विभिन्न धर्म गुरुओं का योगदान

शिक्षा सतत विकास की प्रक्रिया है। प्राचीन काल में शिक्षा धर्म के अधीन थी। जिसमें नैतिक मूल्य, धार्मिक मूल्यों पर आधारित थी। वर्तमान विज्ञान युग में शिक्षा प्रणाली में धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक मूल्यों का अभाव पाया जा रहा है। इसलिए प्राचीन काल से ही विभिन्न महापुरुषों, धर्मगुरु तथा शिक्षा के स्तर को उठाने के लिए प्रयास किए गए। जिनके प्रयासों ने ही शिक्षा को धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक मूल्यों पर आधारित करते हुए शिक्षा को भारतीय संस्कृति से जोड़े रखा। विभिन्न धर्म गुरुओं के द्वारा किए गए प्रयास निम्न है-

❖ धर्मगुरु आदि शंकराचार्य

शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत दर्शन को भारतीय चिंतन धारा का चरमोत्कर्ष माना जाता है। यह संपूर्ण ब्रह्मांड की एकता (ब्रह्म तत्व) और अनेकता (ब्रह्म के माया तत्व) का स्पष्ट ज्ञान कराकर ब्रह्मांड की अनंत शक्ति से परिचित कराता है। शंकराचार्य ने जो बातें शिक्षा के बारे में बताइए हैं वह सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक मानी जाती हैं। शंकर ने शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप को अलग से स्पष्ट करने का कोई प्रयास नहीं किया है। परंतु उन्होंने उसके उद्देश्य निश्चित करने में भारी भूमिका अदा की है। उनकी दृष्टि से जीवन का अंतिम उद्देश्य भेद दृष्टि की समाप्ति और अभेद दृष्टि को प्राप्ति होती है। उन्होंने शिक्षा के द्वारा मनुष्य के शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक, नैतिक व चारित्रिक, इंद्रिय, निग्रह एवं चित्र शुद्धि तथा आध्यात्मिक विकास पर बल दिया। शिक्षा की पाठ्यचर्या के संबंध में शंकर ने मनुष्य के व्यावहारिक जीवन के लिए व्यावहारिक विषय एवं क्रियाओं तथा आध्यात्मिक जीवन के लिए आध्यात्मिक विषयों पर क्रियाओं को

सम्मिलित करने की बात कही है। परंतु व्यावहारिक जीवन को वे प्रकारांतर से आध्यात्मिकता पर आधारित करना चाहते थे। वर्तमान में अपेक्षित वर्ग हीन, धर्मनिरपेक्ष एवं समाजवादी व्यवस्था वेदांत कि अभेद दृष्टि के द्वारा सहजता से प्राप्त की जा सकती है।

❖ गुरु नानक

गुरु नानक सिक्खों के पहले गुरु थे। अंधविश्वास और आडंबर ओं के कट्टर विरोधी थे उन्होंने अपने अनुयायियों को दस उपदेश दिए, जो सदैव प्रासंगिक बने रहेंगे। गुरु नानक की शिक्षा का मूल निचोड़ यही है कि परमात्मा एक अनंत सर्वशक्तिमान और सत्य है। मूर्ति पूजा आदि निरर्थक हैं। इन्होंने हिंदू धर्म में फैली कुरीतियों का विरोध किया।

❖ गौतम बुद्ध

गौतम बुद्ध की शिक्षाओं पर ही बौद्ध धर्म का प्रचलन हुआ। बौद्ध धर्म में नैतिक विकास की शिक्षा पर अधिक जोर दिया। वर्तमान में भी शिक्षा द्वारा नैतिक विकास की बात की जा रही है। शिक्षा द्वारा मनुष्य को किसी कला-कौशल, उद्योग अथवा व्यवसाय में प्रशिक्षित करने की शुरुआत यद्यपि वैदिक काल में प्रारंभ हो गई थी। परंतु उसने व्यवस्थित रूप बौद्ध दार्शनिकों द्वारा मिला।

भारत में शैक्षिक प्रशासन, शैक्षिक संगठन, विद्यालय एवं विश्वविद्यालय शिक्षा और समूह शिक्षा की शुरुआत कर बौद्धों ने हजारों वर्ष पूर्व ही वर्तमान शिक्षा की नींव रख दी थी।

❖ गुरु गोविंद सिंह जी

गुरु गोविंद सिंह सिक्खों के दसवें गुरु थे। उन्होंने सदा प्रेम, एकता, भाईचारे का संदेश दिया। उन्होंने खालसा पंथ की स्थापना (1699) में बैसाखी के दिनों की जो सिख इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। गुरु गोविंद सिंह को ज्ञान, सैनिक क्षमता का और दूरदृष्टि का सम्मिश्रण माना जाता है। इनके द्वारा बताई बातें जो मानव जीवन के हर पहलू पर प्रासंगिक है । जैसे अपनी जीविका चलाते हुए ईमानदारी बरतें, कमाई का दसवां हिस्सा दान दे इत्यादि बातें नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

इसी क्रम में आधुनिक वर्तमान समय में कुछ धर्मगुरुओं ने धार्मिक, विचारों तथा आध्यात्मिक सांस्कृतिक मूल्यों से अनेक कार्य किए, जो समाज और मानव जीवन के लिए

उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। नैतिक तथा धार्मिक मूल्यों को शिक्षा में शामिल करते हुए, शैक्षिकक्रियाकलापों से विशेष योगदान दिया जिनमें से कुछ प्रमुख जैसे श्री श्री रविशंकर, सुधांशु महाराज, ऋतम्भरा जी, मोरारी बापू आदि।

रवि शंकर सामान्यत: श्री श्री रविशंकर के रूप में जाने जाते हैं। तथा विश्व स्तर पर एक आध्यात्मिक नेता एवं मानवतावादी धर्मगुरु हैं। उनके भक्त उन्हें आदर से प्राय: "श्री श्री " के नाम से पुकारते हैं। वे आर्ट ऑफ लिविंग फाउंडेशन' के संस्थापक हैं । यह संस्था पूरे विश्व में कार्य करती है। इनका कथन है- "मैं एक तनाव और हिंसा मुक्त समाज चाहता हूं।" श्री श्री रविशंकर एक ऐसी दुनिया बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं जिसमें रहने वाले लोग ज्ञान से परिपूर्ण और तनाव से मुक्त रह सकें।

साध्वी ऋतम्भरा जिसे लोकप्रिय रूप में दीदी मां के नाम से जाना जाता है। वह एक बहुत ही अध्यात्मिक नेता और समाज सुधारक हैं। उन्हें भारतीय संस्कृति का बहुत सम्मान और हिंदू धर्म का प्रचारक हैं। भारत में महिलाओं और बच्चों के गांव वात्सल्यग्राम की संस्थापक हैं। जिसमें गांव छोड़ने वाली जरूरतमंद महिला और बच्चों को के लिए प्रेम पूर्ण और पोषण वातावरण प्रदान किया जाता है।

इसी क्रम में **जगतगुरु रामभद्राचार्य** के प्रयास भी काफी सराहनीय है। जगदगुरू रामभद्राचार्य भारत के एक उपदेशक धर्मगुरु एवं सनातन धर्म के रक्षक और"जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय के संस्थापक हैं।वह अपनी सरल धर्म प्रवचन के लिए जाने जाते हैं। उनकी शिक्षा प्रक्रिया विद्यालय स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक संचालित होती है।

भारतीय आर्ष परम्परा का प्रारम्भ वैदिक काल से माना जाता है। समग्र भारतीय चिन्तन एवं समाज दर्शन इसी आर्ष परम्परा का उपवृंहण है। भारतीय मनीषा सदैव लोकधर्मी रही है। वैदिक काल से लेकर अधुनातन समाज तक भारतीय संस्कृति में लोकनायकत्व की प्रतिष्ठा सत्ता केन्द्रों को नहीं, लोकोन्मुखी प्रज्ञापुरुषों को प्राप्त हुई है। अपने उर्ध्वगामी चिन्तन से लोक को दिशा देने वाले व्यक्तित्व ही भारतीय जन के प्रेरणा स्रोत एवं उपास्य रहे हैं। मनु, वशिष्ठ, विश्वामित्र, व्यास, बुद्ध, शंकराचार्य, रामानन्द, तुलसीदास, विवेकानन्द, धर्मसम्राट स्वामी करपात्री जैसे लोक नायक सत्ताधिष्ठित नहीं थे। वे जनता के नियन्ता थे। उन्होंने लोक शक्ति को प्राणवान किया है। भारतीय संस्कृति में ऐसे लोकनायकों को ही सन्त अथवा

महात्मा के विरुद से विभूषित किया जाता है। सन्त मुक्तिकामी नहीं होता। मुक्ति तो मानवमात्र का एक पुरुषार्थ है, जिसकी महत्ता व्यक्ति मात्र के लिए है। सन्त लोककामी होते हैं, उनकी मुक्ति सर्वात्मवाद की वैश्विक प्रतिष्ठा में है।

समाज में भोगवादी प्रवृत्ति के विस्तार के समय यह लोकधर्मिता विलुप्त हो जाती है। यही कारण है कि पाश्चात्य अनात्मवादी दर्शन में सन्तों की संख्या विरल है । जबकि भारतीय चिन्तन में लोकधर्मिता प्रत्येक युग में विद्यमान है। इसके अतिरिक्त विजातीय तत्वों के प्रभाव के कारण जब-जब देहात्मवाद का प्राबल्य हुआ और संक्रमणकारी चाकचिक्य ने जन साधारण को आकर्षित किया तब-तब लोकहित अवहेलित हुआ और युगों तक अज्ञान की तमिस्रा में रहने के लिए विवश होना पड़ा। यह भारतीय चेतना के पतन का परिणाम नहीं वरन् विजातीय तत्वों के मिश्रण का परिणाम है। इसी को 'धर्म की हानि' कहा जाता है। जहाँ सन्तों की अवहेलना तथा वैभव एवं सत्ता की उपासना होती है, वहाँ स्खलन स्वाभाविक है ऐसे ही अन्तरायों में सन्त का प्रादुर्भाव होता है । जो अपनी नवनीत वृत्ति से समाज का मार्ग दर्शन करते हैं और आध्यात्मिक उन्नति का पथ प्रशस्त करते हैं।

अनादिकाल से प्राणिमात्र के ऐहलौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय प्राप्त कराने वाले सनातन धर्म की जगतगुरु परम्परा में ऐसे विरले महापुरुष इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए हैं, जिन्होंने अपने दिव्यज्ञान, शाश्वत चिन्तन एवं महनीय तप के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का सफल मार्गदर्शन किया है। सौभाग्य से इसी अक्षुण्ण परम्परा में धर्म चक्रवर्ती महामहोपाध्याय, पद वाक्यप्रमाणपारावरीण, समस्त तुलसी साहित्य कण्ठस्थीकृत, श्री चित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर जगतगुरु रामानंदाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य का शुभनाम अत्यंत श्रद्धा एवं गर्व से लिया जाता है। सनातन धर्म के क्षेत्र में शास्त्रीय समाधान एवं राष्ट्र देव की आराधना में संतों का योगदान प्रस्तुत करने वाले दुर्लभ महापुरुषों में पूज्यपाद जगद्गुरु की गणना सम्मान पूर्वक की जाती है।

अपने पावन अन्तःकरण से, वन्दनीय वाग्वैभव से तथा तदनुरूप आचरण से जगद्गुरुपद की गरिमा में नित्यनवीन अभिवृद्धि करने वाले तथा भारतीय जीवन मूल्यों एवं उदात्त आदर्शों का सम्पूर्ण विश्व में प्रचार-प्रसार करने वाले श्रीतुलसीपीठाधीश्वर धर्मचक्रवर्ती जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामाभद्राचार्य महाराज (चित्रकूटधाम) का व्यक्तित्व विलक्षण एवं कृतित्व चमत्कारी है। श्रीचरणों के द्वारा किये जा रहे हिन्दुसंघटन के आध्यात्मिक प्रयासों एवं सुझावों में दूरदर्शिता एवं क्रान्तदर्शिता स्पष्टतः परिलक्षित होती है । तथा ही पूज्यपाद जगद्गुरु द्वारा अपने अध्यात्मिक जीवन के चार दशकों में धार्मिक क्षेत्र के मंचों से मर्यादा

पुरुषोत्तम भगवान् राघवेन्द्र सरकार की तथा लीलापुरुषोत्तम भगवान् यादवेन्द्र सरकार की पावन एवं दिव्य कथाओं के माध्यम से धार्मिक जगत् में जो महनीय योगदान किया जा रहा है वह मानवमात्र का तो सन्मार्ग प्रशस्त कर ही रहा है हिन्दु जीवन के लिए संजीवनी भी सिद्ध हो रहा है। यही कारण है कि भारतीय समाज में सौमनस्य प्रवाहित करने वाले अनेक राष्ट्रीय नेता तथा हिन्दुसंघटन के लिए अहर्निश तत्पर अनेक विभूतियाँ भी पूज्यपाद जगद्गुरु का समय-समय पर सुयोग्य मार्गदर्शन प्राप्त करके स्वयं को अनुगृहीत मानती हैं। पूज्यपाद जगतगुरु द्वारा लेखन के क्षेत्र में किये जा रहे स्तुत्य प्रयासों का प्रर्याप्त अनुभव उन पाठकों को भली-भाँति होता है जो वैदिक, पौराणिक, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों में निहित गूढरहस्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इनकी नवनवोन्मेषशालिनीप्रतिभा के नित्य दर्शन करते हैं। संक्षेप में कहें तो पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्री रामभद्राचार्य महाराज आध्यात्मिक जगत की ऐसी वन्दनीय विभूति हैं जो प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी अपने जीवन की विलक्षण एवं गंभीर सारस्वत साधना से सभी को चमत्कृत करते हैं तथा जिनके जीवन का प्रत्येक क्षण मानवता की रक्षा, हिन्दुत्वनिष्ठा और भारतीय आर्षग्रन्थों की प्रतिष्ठा के लिए पूर्णतया समर्पित है।

1.2 समस्या का प्रादुर्भाव

शिक्षा मनुष्य के जीवन में जीवन चलने वाली प्रक्रिया है। किसी भी देश के विकास एवं उसके सामाजिक उत्थान में उस देश के नागरिकों का सहयोग अति आवश्यक होता है। अतः शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। प्राचीन काल में शिक्षा धार्मिक, संस्कृति एवं नैतिकता से परिपूर्ण होती है। जैसे-जैसे हम आधुनिकता और विज्ञान युग की ओर बढ़ते गए शिक्षा प्रणाली से धर्म संस्कृति और नैतिकता का लोप होता गया। विज्ञान युग तक आते आते शिक्षा के क्षेत्र में कई बदलाव आए, शिक्षा का व्यवसायीकरण, राजनीतिकरण हुआ। परंतु जब तक शिक्षा जीवन के मूल्यों, आदर्शों एवं मान्यताओं का परिचय नहीं देती तब तक वह शिक्षा नहीं कही जा सकती।

वर्तमान समय में शिक्षा का धर्म से विमुखीकरण हुआ है और शिक्षा व्यवस्था में अनेक समस्याएं सामने आ रही हैं। शिक्षा के व्यवसायीकरण के बाद समाज में आर्थिक संपन्न लोग ही अपने बच्चों को शिक्षा दिला रहे हैं तथा गरीब, पिछड़े , असहाय बच्चे आज भी अच्छी शिक्षा के लिए वंचित हैं। इन वंचित बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाने व उनकी हर संभव मदद को कुछ धार्मिक सामाजिक संस्थाएं प्रयास कर रही हैं।

1.3 अध्ययन की आवश्यकता

प्राचीन काल में शिक्षा की उपादेयता, आवश्यकता एवं महत्व को स्वीकार किया गया था। शिक्षा एक वेदाङ्गा थी और जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक थी। यही कारण है कि शिक्षा के ऊपर सभी लोगों का ध्यान था साधारण जनता से लेकर बड़े-बड़े दार्शनिक एवं राजकीय पुरुष भी इस पर विचार करते रहे।

भारत में प्रचलित शिक्षा पद्धति के मूल में पाश्चात्य जगत के भौतिकतावादी दर्शन की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती थी। यह पद्धति हमारे देश के आध्यात्मिक संस्कृति के सर्वथा प्रतिकूल थी यह हमें जीवन के उच्च लक्ष्य से विमुख करके घोर पतन की ओर ले चलती है। अंत: भारत को एक ऐसी शिक्षा नीति की आवश्यकता थी जिसमें राष्ट्रीय तथ्यों की प्रमुखता हो ताकि भारत के प्राचीन गौरव को प्रतिष्ठापित किया जा सके। वर्तमान शिक्षा की नींव एक ठोस जीवन दर्शन भारत के आध्यात्मिक दर्शन पर खड़ी की जानी चाहिए थी जिससे भारतीय जाति में सुदृढ़ता एवं आत्मविश्वास आ सके और भारत सम्पूर्ण विश्व में अपनी आध्यामिकता का संदेश देकर विशिष्ट एवं निदृष्ट उद्देश्य को प्राप्त कर सकें।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली आधुनिक भारतीय परिवेश में अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल सिद्ध हो चुकी है तथा सांस्कृतिक मूल्यों में गिरावट एवं नैतिकता में हास दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। जिससे शोधकर्ती के मन मस्तिष्क में यह विचार आया कि आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक रूप से अविकसित भारत जैसे देश के लिए स्वामी दयादन्द द्वारा दर्शायी गयी शिक्षा प्रणाली का समावेश नवयुग के पाठ्यक्रम में आवश्यक है। इसी विचारधारा ने शोधकर्ती को स्वामी दयानन्द सरस्वती के दर्शन में निहित शैक्षिक मूल्यों एवं विचारों का वर्तमान शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में एक समालोचनात्मक अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया।

1.4 समस्या कथन

शोधकर्ता द्वारा शोधकार्य के लिए जिस समस्या का चयन किया गया है , उसका शीर्षक इस प्रकार है -

"जगतगुरु रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन"

1.5 अध्ययन के उद्देश्य

किसी भी शोध अध्ययन में उद्देश्यों का निर्धारण उस अध्ययन का निश्चित दिशा प्रदान करता है जिससे अध्ययन सरल व सुव्यवस्थित सुगम हो जाता है। अंतः इस शोध अध्ययन का उद्देश्य इस प्रकार हैं

- भारतीय शिक्षा के सन्दर्भ में जगतगुरु रामभद्राचार्य के शैक्षिक विचारों का निरीक्षण, परीक्षण एवं मूल्यांकन करना।
- जगतगुरु रामभद्राचार्य के दार्शनिक विचारों का अध्ययन करते हुए उनके शैक्षिक विचारों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन एवं विश्लेषण करना।
- जगतगुरु रामभद्राचार्य के शैक्षिक विचारों का प्रभावित करने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक तत्वों का अध्ययन करना।
- वर्तमान शिक्षा के सन्दर्भ में जगतगुरु रामभद्राचार्य के शैक्षिक मूल्यों एवं विचारों की उपादेयता का निर्धारण
- इस शोध के माध्यम से शिक्षा दार्शनिकों की परम्परा में जगतगुरु रामभद्राचार्य का स्थान निर्धारण करते हुए अग्रिम नवीन शैक्षिक शोधों की खोज करना।
- जगतगुरु रामभद्राचार्य को शिक्षा पद्धति से वर्तमान भारतीय शिक्षा क्या लाभ प्राप्त कर सकती है इसका विश्लेषण करना।
- शिक्षा जगत हेतु कतिमय बहुमूल्य व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करते हुए शोध कर्ताओं के सम्मुख शोध के नये क्षेत्रों का उद्घाटन करना।

1.6 सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन

किसी शोध अध्ययन में सम्बन्धित शोध साहित्य का अध्ययन नितांत आवश्यक है। पूर्व के निरीक्षण व मूल्यांकन करने से शोधकर्ता को उस विषय के विभिन्न पहलुओं पर किए गए कार्यों एवं परिणामों का पता लगता है। इससे शोधकर्ता अपने को निर्धारित कर सकता है। समस्या के जिस पक्ष या अंग पर शोध नहीं किया गया उस पक्ष को अपने शोध अध्ययन में सम्मिलित कर सकता है। इस प्रकार शोधकर्ता अपने से पहले की अनुसंधानकर्ताओं से सीख कर अपने बाद आने वाले के लिए बीच की कड़ी बनता है। सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन

से ज्ञात होता है कि जगद्गुरु रामभद्राचार्य के शैक्षिक विचार, दिव्यांग विश्वविद्यालय, प्रज्ञाचक्षु पूर्व माध्यमिक विद्यालय, सामाजिक एवं आध्यात्मिक कार्य पर जो अध्ययन किए गए हैं वे अत्यंत संकीर्ण एवं सीमित हैं। कुछ अध्ययन तो एकांगी कहे जा सकते हैं। किसी भी अध्ययन में जगद्गुरु रामभद्राचार्य के शिक्षा सम्बंधी विचारों का सर्वांग विवेचन जैसे दर्शन, उद्देश्य पाठ्यक्रम, अनुशासन, विद्यालयप्रांगण में शिक्षक-विद्यार्थी संबंध परीक्षा पद्धति मूल्यांकन आदि पर सम्पूर्ण विवेचन प्रमाण तथा साक्ष्य युक्त नहीं किया गया है, अतः आज के शैक्षिक परिवेश में इसका बहुत व्यापक अभाव है। कुछ शोध कार्यों का संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। जिनसे लघु शोध प्रबंध करने की पृष्ठभूमि मिली। ऐसे विगत शोध कार्य जगतगुरु रामभद्राचार्य द्वारा स्थापित प्रज्ञाचक्षु पूर्व माध्यमिक विद्यालय चित्रकूट एवं जगतगुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय चित्रकूट में जो लघु शोध प्रबन्ध किए गए हैं|

1.7 अध्ययन विधि

इस शोध को पूरा करने में दार्शनिक विधि का प्रयोग किया गया जिसमें से निम्न है -

शोध प्रक्रिया में शोध की विधि अत्यंत महत्वपूर्ण होती है शोध समस्या के निराकरण के लिये अपनाये जाने वाले विविध चरणों को विधि वर्णित करती है विभिन्न विद्वानों ने शोध विधियों का वर्गीकरण विभिन्न दृष्टिकोण से किया है।

जॉन डब्ल्यू0 बेस्ट के अनुसार शोध विधि

1. वर्णनात्मक विधि

2. ऐतिहासिक विधि

3. दार्शनिक विधि

व्हिटनी के अनुसार शोध विधि

1. वर्णनात्मक विधि

2. ऐतिहासिक विधि

3. दार्शनिक विधि

4. प्रयोगात्मक विधि

5. फलानुभव विधि

6. सामाजिक विधि

7. रचनात्मक विधि

8. पाठ्यक्रम विधि

प्रस्तुत शोध दार्शनिक शोध है। इस शोध में विषय वस्तु विश्लेषण विधि का प्रयोग किया जाता है। विषयवस्तु विश्लेषण विधि निश्चित रूप से परिमाणात्मक विश्लेषण है। यह विधि शोध की प्रक्रिया एवं प्रविधि दोनों में प्रयुक्त होती है।

विषयवस्तु के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कैपलिन ने कहा है "विषयवस्तु विश्लेषण एक विशेष सप्रेक्षण के अन्तर्गत निहित आशयों का क्रमबद्ध तथा मात्रात्मक रूप से विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

वैलेस तथा बेरिसन ने विषयवस्तु की परिभाषा को अधिक विस्तृत करते हुये लिखा है- "क्रमबद्ध विषयवस्तु विश्लेषण अधिकतर सयोग रूप से प्राप्त सामग्री के विवरणों को ऐसा विशिष्ट रूप प्रदान करने का प्रयास करता है। जिससे पाठक अथवा श्रोता के प्रति दिये गये उद्दीपकों की प्रकृति तथा सापेक्षित शक्ति को वस्तुपरक आधार पर प्रस्तुत किया जा सके।

विषयवस्तु विश्लेषण निम्न तीन प्रकार से किया जाता है-

1. शाब्दिक विश्लेषण-

विषयवस्तु विश्लेषण विधि अधिकांशतः सामान्य शब्दों और शीघ्रता से समझ आने वाले शब्दों की पहचान करता है शाब्दिक विश्लेषण में बच्चों के लेखों का संग्रह सामाजिक अक्षर या शब्द और बच्चे या वृद्ध के सामान्य स्थिति में शब्दों के प्रयोग केअन्य प्रतिमान निहित हैं।

2 प्रमाण सम्बन्धी विश्लेषण-

इस विश्लेषण में शोधकर्ता सहायक लिखित सामग्री का चयन करता है। वह सहायक ग्रन्थों में प्रस्तुत किये विचारों समीक्षाओं का अध्ययन करता है व प्रमाण प्राप्तकरना चाहता है।

3. परिमाणात्मक विश्लेषण-

इसमें विभिन्न अभिलेख और अधिसूचनायें अन्य प्रकार के प्रतिमानों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं।

विषयवस्तु विश्लेषण विधि का औचित्य-

विषयवस्तु विश्लेषण विधि पहले से विद्यमान ग्रन्थों के विश्लेषण और संश्लेषण से सम्बन्धित शिक्षा के नि०लि० क्षेत्रों में उपयोगी है।

1. यह विधि निश्चित रूप से आगामी क्रियाओं के सुधार के लिये उपयोगी है।

2 यह विधि प्रमाण सम्बन्धी ऐतिहासिक शोध की भाँति सामग्री एवं लेखों से सम्बन्धित होती है। अतः इसे प्रयोग करना सरल है।

3. यह विधि उपलब्ध तथ्य एवं मापन इस प्रकार के अध्ययनों को अधिक मौलिक दृष्टिकोण व तथ्यों की खोज की और अग्रसर करती है।

1.8 शोधाध्ययन के स्रोत

स्रोत दो प्रकार के होते हैं

1- प्राथमिक स्रोत

वह सामग्री जिसे अनुसन्धानकर्ता स्वयं अपने प्रयोग अथवा खोज द्वारा प्राप्त करता है इसे प्राथमिक सामग्री या स्रोत कहते हैं। इस सामग्री को पहली बार प्राप्त किया गया है ।

2- द्वितीयक स्रोत

वह सामग्री जिसे अनुसंधानकर्ता दूसरों के प्रयोग अथवा अनुसंधान से प्राप्त कर लेता है। यह सामग्री स्वयं अनुसंधानकर्ता द्वारा नहीं प्राप्त की गयी अपितु अन्य स्रोतों से प्राप्त हुई है। इसी कारण इसे द्वितीयक सामग्री कहते हैं। इस प्रकार के ऑकडों का एक बार सांख्यिकीय विश्लेषण हो चुका है। और उससे कुछ निष्कर्ष निकाले जा चुके हैं। जब अन्य अनुसंधानकर्ता इसी आँकड़े को अपने अनुसंधान के लिये प्रयोग में लाता है तो वह उसकी मौलिक सामग्री नहीं होती है।

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने प्राथमिक स्रोत एवं द्वितीयक स्रोत दोनों का प्रयोग किया है। जिसमें प्राथमिक स्रोत में साक्षात्कार तथा स्वयं जगदगुरु की लिखी कृतियों का प्रयोग किया है तथा द्वितीयक स्रोत में कुछ पुस्तकें जैसे- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, पत्रिकारये- तुलसी पीठ सौरभ, अनुसंधान परिचय, अनुसंधान की दार्शनिक विधि, विशिष्ट बालक, शिक्षा के दार्शनिक आधार तथा अन्य पत्रिकाएं एवं समाचार पत्र का प्रयोग किया गया है।

1.9 अध्ययन का परिसीमांकन

किसी भी शोध में साधन,शक्ति और समय सीमित होने के कारण समस्या के सभी पक्षों का गहन अध्ययन करना कठिन होता है। इसलिए सम्बंधित विषयवस्तु का परिसीमन करना आवश्यक हो जाता है। परिसीमन से शोध समस्या को सीमा में रखकर देखने से है ।जगतगुरु रामभद्राचार्य साहित्यक यात्रा बिंदु से सिंधु की ओर रही है जिसमें विभिन्न पक्ष समाहित है ।अतः शोधकर्ता ने उनके प्रसिद्ध पुस्तकों को अध्ययन हेतु सम्मिलित किया – अरुन्धती महाकाव्य, अष्टावक्र महाकाव्य, काका विदुर, माँ शबरी,राघवगीत गुंजन, भक्तिगीत सुधा एवम् वीडियो कैसेट सीडी आदि को सुनकर अध्ययन किया तो पता चला की जगतगुरु के शैक्षिक व दार्शनिक विचार इन पुस्तकों में समाविष्ट है ।

1.10 अध्ययन का महत्व एवम् सार्थकता

मन्ये विधात्रा जगदेक काननम्

विनिर्मित वर्षमिदं सुशोभनम्

धर्माश्व्युत्पाणि कियन्ति यत्र वै

कैवल्यरूप च फल प्रचीयते।

मनुष्य को सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए कर्म करने की आवश्यकता पड़ती है । कर्मप्रधान व्यक्ति ही जीवन में वास्तविक सुख का आनंद प्राप्त कर सकता है । अकर्मण्यता मनुष्य को निराश और भाग्यवादी बनाती है ।

मनुष्य के कर्म अनेक प्रकार के होते हैं । कुछ कर्म तो वह अनिच्छापूर्वक बाध्यता के साथ करता है परंतु मनोयोग से किया गया कृत्य ही उसे सच्चा आनंद प्राप्त कराता है । इन

समस्त क्रियाओं में अध्ययन सर्वश्रेष्ठ है। अध्ययनप्रिय व्यक्ति स्वयं को सदैव प्रसन्नचित्त अनुभव करता है।

अध्ययन में मनुष्य की अभिरुचि सदैव उसे उत्थान की ओर ले जाती है । अध्ययन की महिमा अनंत है। किसी भी राष्ट्र अथवा देश के नागरिक जितना ही अध्ययन को महत्व देंगे वह राष्ट्र उतना ही प्रगतिशील होगा। समस्त विकसित देश, विकासशील देशों से इसलिए अग्रणी हैं क्योंकि उन्होंने प्रारंभ से ही अध्ययन को महत्व दिया। शिक्षा का उनका स्तर हमारी तुलना में कहीं अधिक ऊँचा है। अत: राष्ट्र का विकास तभी संभव है जब वह देश में अध्ययन को महत्व देता है।

द्वितीय अध्याय

जीवन वृतान्त एवम् पुरस्कार

2.1 जीवन वृतान्त

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से भारत में प्रकट होता हूँ। साधु-जनों का उद्धार करने के लिए पाप कर्म करने वालों का विनाश करने के लिए युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ क्योंकि मैं साधु-जनों व सज्जनों को कष्ट में होते नहीं देख सकता।

इसी प्रकार प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद संत श्री तुलसीदास के अनुसार

"जब-जब होइ धरम के हानी।

बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।

तब-तब प्रभु धरि विविध शरीरा।

हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

अर्थात् श्री गोस्वामी भी कहते है कि भगवान कहते है कि जब-जब धर्म की हानि और अधर्म का वर्चस्व होने लगता है तब-तब अशुभ आचरण करने वाले अर्थात् (असुर) अधर्मी लोगों का बोलबाला हो जाता है तब मैं मनुष्य रूप धारण करके सज्जन लोगों की पीड़ा हरण कर दुष्टों का संहार कर देता हूँ। जिस समय गोस्वामी तुलसीदास का जन्म हुआ, महात्मा सूरदास का जन्म हुआ एवं निर्गुण संत कबीर दास का जन्म हुआ तो उनके समकालीन देश एवं वातावरण से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समय में गीता एवं मानस की युक्ति चरितार्थ थी। अर्थात उस समय धर्म का विनाश हो रहा था और अधर्म अपनी चरम सीमा पर

था इस समय समाज में न तो नारी के लिए कोई सम्मान था न ही उचित स्थान, न ब्राह्मणों के लिए कोई मान सम्मान था गोहत्या आदि भयंकर पाप विधर्मियों के द्वारा होता था क्योंकि उस समय अज्ञानी एवं अनपढ़ जनता के बीच नरबलि एवं पशु बलि कराया जाता था। तब मानव जीवन बिल्कुल मूल्यहीन हो चुका था। उस समय जिसकी लाठी उसकी भैस वाली कहावत चरितार्थ होती थी।

ऐसी विषम परिस्थिति में जब निरीह जनता एवं साधुजनों को विधर्मियों ने नाना प्रकार से कष्ट देना प्रारम्भ कर दिया तो उन्होंने ईश्वर को करूण पुकार लगायी। तब भगवान ने अपने अंश के रूप में जैसे तुलसीदास जी, सूरदास जी, कबीरदास आदि भगवद् भक्तों का अवतार हुआ और उन्होंने लुप्त हुए सभी धर्म ग्रन्थों को आविर्भूत करके अबोधजनता के सामने जो धर्म की व्याख्या भूल गये थे, जिन्हें धर्म क्या है? और अधर्म क्या है? पता ही नहीं था ऐसे लोगों का भी उत्थान किया एवं सम्पूर्ण भारत वर्ष में धर्म का प्रचार किया। साथ ही समाज में फैले हुए अत्याचार व अधर्म को भगवान के माध्यम से भगवद्भक्ति रूपी हलवार से पाप रूपी दैत्य का विनाश किया। ठीक इसी प्रकार संसार में फैले हुए अनाचार को मिटाने के लिए हमारे धरोहर वेद पुराणों की महिमा बताने के लिए एवं दोन-हीन विकलांग, असहाय मानव के उद्धार के लिए एवं आज के ब्राह्मण जो नाम मात्र के ब्राह्मण रह गये है, कर्म से बहुत दूर हो गये है उनको जागृत करने के लिए एवं संसार का उद्धार करने हेतु पूज्य श्री गुरुदेव युगपुरूष स्वामी रामभद्राचार्य महाराज भारत वर्ष में मनुष्य रूप में अवतरित है।'

अनादिकाल से लौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय प्राप्त कराने वाले सनातन धर्म की जगद्गुरू परंपरा में ऐसे विरले ही महापुरुष इस धरा धाम पर अवतीर्ण हुए है। जिन्होंने अपने दिव्य ज्ञान, शाश्वत चिंतन, एवं गहनीय ताप के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का सफल मार्गदर्शन किया है सौभाग्य से इसी अक्षुण्ण परंपरा में धर्म चक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, श्री चित्रकूट तुलसी पीठाधीश्वर जगद्गुरू रामानन्दाचार्य स्वामी श्री रामभद्राचार्य महाराज का नाम बहुत श्रद्धा और गर्व में लिया जाता है। सनातन धर्म के क्षेत्र में शास्त्रीय समाधान एवं राष्ट्रदेव के आराधन में सन्तों का योगदान प्रस्तुत करने वाले दुर्लभ महापुरुषों में पूज्यपाद जगद्गुरू की गणना सम्मानपूर्वक की जाती है।

2.1.1 आविर्भाव

उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद में शांडीखुर्द नामक गाँव में 14 जनवरी सन् 1950 ई० को मकर संक्रान्ति की प्रथम प्रहरीय रात्रि बेला में वशिष्ठ गोत्रीय सरयूपारीण ब्राह्मण मिश्र वंश में पूज्य माता श्रीमती शचीदेवी एवं पूज्य पिता पंडित राजदेव मिश्र के घर एक अलौकिक दिव्यशक्ति का आविर्भाव हुआ। पूज्य पितामह पंडित सूर्यबली मिश्र ने अद्भुत बालक को गिरिधर मिश्र नाम से अलंकृत किया।

2.1.2 शारीरिक स्थिति एवम् दृष्टिबाधन

जगन्यिन्ता परमपिता परमेश्वर ने बालक गिरिधर के हितार्थ सांसारिक प्रपंचों से दूर रखने के लिए कुछ और ही सोच रखा था, अत: जन्म के दो मास पश्चात ही बालक के कोमल नेत्रों को रोहे रूपी राह ने सदा-सदा के लिए ग्रस किया। यह घटना तो पारिवारिक सदस्यों के लिए हृदय विदारक बनी किन्तु बालक गिरिधर और सम्पूर्ण मानव मात्र के लिए वरदान सिद्ध हुई। वाह्य चक्षु बन्द होने के साथ ही साथ बालक के दिव्यज्ञान के अन्तर्चक्षु खुल गये, तभी से बालक को निरंतर परमात्म तत्व के चिन्तन के अतिरिक्त अन्य कोई सांसारिक प्रपंच लेशमात्र के लिए भीस्पर्श नहीं कर सका। बालक निरंतर भगवत्कृपा प्राप्त कर अपने विकास पथ पर तीव्रगति से दौड़ पड़ा।'

कुछ समय के अन्तराल पर बालक ने अपनी "आत्मकथा" "मेरी स्वर्णयात्रा" में अपने जीवन के संघर्षों उतार- चढ़ाव के बारे में भी जनमानस को अवगत कराया, और समाज को इस प्रकार संदेश दिया कि विषम परिस्थितियाँ भी दृढ़ संकल्पित मनुष्य के मार्ग को अवरूद्ध नहीं कर सकती।

आप वही बालक है, कि जिसे लोग सामान्य सी बारात में ले जाने में भी अशुभ का अनुभव करते थे, जिनके जाने से वर यात्रा की शोभा बिगड़ती थी, और बर यात्रा में अंमगल की संभावना बढ़ जाती थी, आज वही गिरिधर नाम का बालक बड़ी से बड़ी वर यात्रा या मंगल कार्य हो उनका उद्घाटन करता है। यह क्या है? केवल ईश्वर कृपा, जो वज़ को तृण और तृण को वज्र बना देती है। जो बालक अपना हस्ताक्षर भी नहीं कर सकता था आज जगद्गुरु पद पर क्यों पहुँच गया किस लिए? किसके बल पर? उसके साथ केवल एक ही प्रीति, एक ही प्रतीति, केवल राघवेन्द्र की जैसा कि सर्वविदित है और 'सूरसागर' में सूरदास ने भी कहा है

चरन कमल बंदौ हरि राइ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै , अंधे कौ सब कुछ दरसाइ॥

बहिरौ सुनै , गूँग पुनि बोलै , रंक चलै सिर छत्र धराइ।

सूरदास स्वामी करूनामय , बार - बार बंदौं तिहिं पाइ॥

बचपन में आपक नेत्रों की ज्योति चली गयी. तो सभी ने कह दिया कि भगवान ने सोने के शरीर को मिट्टी का बना दिया। लोग पश्चाताप करते और कहते कि भगवान ने बहुत बड़ा अनर्थ किया, परन्तु व्यक्ति के कर्मों को नहीं देखते। धीरे-धीरे यह रहस्य खुला और आपको आभास हुआ कि ईश्वर जो भी करता है, अच्छा ही करता है, बुरा नहीं, भले ही हमारे समझ में न आये। आपके जीवन का इतिहास भी कुछ इसी प्रकार का है।

आप एक सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में जन्में, जो कि पण्डित स्वनामधन्य, वशिष्ठगोत्रीय, विद्वद्वरिष्ठनिगमागम् पुराणवेत्ता संस्कृतभाषाकृत भूरिपरिश्रम, पंडित श्रीराम बिहारी मिश्र के द्वितीय पुत्र श्री कृष्णानन्द मिश्र के प्रथम पुत्र पंडित सूर्यबली मिश्र एक अत्यन्त कर्मनिष्ठ, सदाचार, सम्पन्न एवं परमर्वैष्णव तिलक ब्राह्मणवर्य थे. जो आपके दादाश्री थे। परमेश्वर की कृपा का जो मधुरतम अनुभव है उसमें पूज्य दादाही निमित्त बने थे। अर्थात् दादा के माध्यम से ही आपने ईश्वर की कृपा के बड़े-बड़े मधुरतम अनुभव किये हैं। पंडित सूर्यबली मिश्र एक न्यायवादी, अनुशासनप्रिय, एवं धर्मपरायण व्यक्ति थे। उनके तृतीय पुत्र पंडित राजदेव मिश्र एक उदारमना व्यक्तित्व तथा सत्यवादी सौम्य एवं सुलझे हुए विचार वाले व्यक्ति है, जिनके आप द्वितीय पुत्र है। अर्थात 14जनवरी 1950 विक्रमी संवत् 2006 को माघ कृष्णएकादशी शनिवार की गत्रि 10 बजकर 34 मिनट पर मकर संक्रान्ति के बेला पर अनुराधा नसत्र में शांडीखुर्द जौनपुर जनपद के (उत्तर प्रदेश) में आपका जन्म पंडित श्री राजदेव मिश्र की धर्मपत्नी श्री परमादरणीया सौभाग्यवती 'शचीदेवी' की कुक्षि से हुआ। अत: आप के ही श्रीमुख से आपकी माता आज भी दर्शन दिया करती है। जन्म और जन्म के पीछे कुछ रहस्य सुने जाते है।

स्वयं शची माता के श्रीमुख से एक घटना का वर्णन इस प्रकार है कि आपके जन्म के एक दिन पहले किसी प्रसंग को लेकर शची माता का वाकयुद्ध दादी से हो गया। और उन्होंने उस दिन भोजन नहीं लिया, अपने हिस्से का भोजन ढक कर रख दिया और क्रोध में

सो गयी, उसी समय शची माँ के शब्दानुसार सपने में उन्हें एक सन्त के दर्शन हुए। सन्त ने माँ से भोजन मांगा माँ ने कहा मेरे पास भोजन कहाँ है? सन्त ने कहा कि भोजन तो तुम्हारे पास रखा है, तुम झूठ बोल रहो हो। अपने खाने के लिए जो भोजन रखा है वो मुझे खाने को दे दो मौँ ने भोजन दे दिया और सन्त ने भरपेट भोजन किया और कहा कि चिन्ता न करो कल मकर संक्रान्ति को तुम एक अद्भुत बालक को जनोगी कि जो भविष्य में बहुत बड़ा सन्त होगा। और बहुत बड़ी-2 सन्त परंपरा का नेतृत्व करेगा। इसके दूसरे ही दिन आपका जन्म हुआ। शची देवी के कथनानुसार उस समय प्रसूति गृह में दीपक नहीं था। वहीं बैठी सभीमहिलाओं को एक विशेष प्रकार के प्रकाश की अनुभूति हुई। जन्म के दो मास के पश्चात् ही अर्थात् 14 मार्च 1950 को आपकी आँखों को एक रोहुआ नामक रोग ने पकड़ लिया। उससे आँखों में दाने पड़ गये। इसे अन्य भाषा में तपोड़िया भी कहते है। उन दिनों देहात में चिकित्सा व्यवस्था का अभाव होने के कारण पास के ही एक गाँव मिश्रमऊ में एक महिला हुआ करती थीं जो बालक के रोहुआ का निदान करती थी, उसे फोड़ दिया करती थी और वह ठीक हो जाता था। वह महिला पं०सत्य नारायण मिश्र की पत्नी और अभी भी वर्तमान में पंडित विभूति नारायण मिश्र को माँ थी। संयोग प्रबल हुआ और सर्वसम्मति से आपकी दादी दो मास के बालक को लेकर मिश्राणी के घर मिश्रमऊ में आयी।

मिश्राणी ने बालक की आँख देखी और हररे का अंजन बनाया और उस खुथुआ को फोड़ना चाहा वे 'खुथुआ' को फोड़कर रोग का निदान करना चाह रही थी, परन्तु ईश्वर इच्छा से कुछ और हो गया और आपके भवरोगों का ही निदान हो गया। अर्थात रोहुआ फोड़ते- फोड़ते आप के कोमल नेत्र ही फूट गये। नेत्रों की सम्पूर्ण ज्योति चली गई रक्तस्राव को देखकर सबने समझा कि आँख का रोग ठीक हो रहा है। परन्तु उन्होंने बल लगाकर फोड़ा तो दोनों आँखें ही फूट गयी उस समय की पीड़ा का आभास शायद ही आपको हुआ हो। तीन दिन तक किसी ने इस पर कोई चिन्ता नहीं व्यक्त की, भिन्न-भिन्न औषधियां लगाते रहे। "बालानांरोदनंबलम्।" बालक रोता होगा इससे उसकी परिस्थिति काकिसको ज्ञान हो सकता था? हाँ परन्तु भगवान को ज्ञान हो रहा होगा। परन्तु जब आँख में सूजन आई और घाव पके, और खुन व पीप निकलने लगी तब लोगों ने ध्यान से देखा तो आँख की पुतली पर श्वेतिमा छा गयी थी। दोनों आँखे समाप्त जैसी हो गयी थी। संयोगात आपके पूज्यपिता भी बम्बई से घर आये हुए थे, और उन्होंने मात्र एक ही दिन आपको चक्षुष्मान देखा। तदनन्तर आपके पिता श्री

ने माँ के साथ लखनऊ के किंगजार्ज हास्पिटल में 21 दिन तक रहकर चिकित्सा करवाई परन्तु गये हुए नेत्रों की ज्योति फिर वापस नहीं आ सकी।

चिकित्सकों ने स्पष्ट कह दिया कि ये आँखे अव नहीं बन सकती। अब बालक को इसी प्रकार जीना पड़ेगा इसके बाद भिन्न-भिन्न चिकित्साएं हुई, बम्बई सीतापुर जहां भी जिसने बताया। आयुर्वेद, होमियोपैथ, तंत्र-मंत्र, टोटका जो भी कराया जा सकता था, जपयोगादि सब कराया गया, परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। धीरे-धीरे समय का प्रवाह बहुता गया और आप बड़े होते गये। और परिस्थितियों के साथ सामंजस्य भी स्थापित करने की कला सीख गये। दातुन करना, खाना, मुँह धोना वस्त्र पहनना, आदि जितना संभव हो सकता था, आपके परिवार वालों ने आपके संस्कार में डाले। बच्चों की चेष्टाओं को सुनकर आपका भी मन विचलित होता परन्तु आपको इसका आभास ही नहीं कराया गया था कि आपको कुछ नहीं दीखता। और आप यह सुनने को भी तैयार नहीं थे, कि हमें दिखाई नहीं देता।

अब मै आपके जीवन की उन घटनाओं पर प्रकाश डालना चाहता हूँ, जो आपके ही साक्षात्कार का अंश है, एक बार आपके दादा श्री ने आपको घल्ला पीने का स्वाद बताया, अर्थात् गोंद में लेकर गाय के समीप गये और उसके स्तन को मुँह में पकड़ा दिया और उसके ताजे दूध का स्वाद आपको चखाया, आप बड़े प्रसन्न हुए, और दादा से बार-बार घल्ला पीने की जिद करने लगे। और वे पिलाते भी, परन्तु एक दिन आपने सोचा कि दादातो जब अवसर लगेगा तब पिलायेंगे, चलो आज मै स्वयं पी लेता हूँ, लाल गाय द्वार पर बंधी हुई थी परिचित और विश्वस्त भी थी, उसका दूध आप पिया करते थे, दादा कुछ काम कर रहे थे, और ज्यों ही आपने घल्ला पीने के लिए उसके थन में मुँह लगाया और दूसरे हाथ से थन दबाया। वह क्रोधित हो गयी और अपनी सींगों से आपके ऊपर प्रहार कर बैठी, तत्पश्चात् आप दूर जा गिरे। आज भी आपके माथे पर उसका निशान बना हुआ है उस समय जो खून गिरा वह रजोगुण से आया हुआ प्रारब्ध था, जो समाप्त हो गया। आपका मन निर्मल, और स्मरणशील बन गया। इस प्रकार आपके जीवन में तमाम घटनायें घटी जिनका आपके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा और पारिवारिक वातावरण अच्छा और गीता, महाभारत, रामायण का नित दिन पाठ होता था, जिसका प्रभाव आपके विचारों व संस्कारों पर पड़ा और आपने बहुत अल्पकाल में ही 'गीता जी', रामायण महाभारत, गोस्वामी की रचनाएं कण्ठस्थ करके मानो यज्ञोपवीत संस्कार करवाने की योग्यता हीअर्जित कर ली।

प्रस्तुत अध्ययनोपरान्त यह ज्ञात हुआ कि ईश्वर बड़ा ही कारसाज है, वह जो भी करता है, अच्छा ही करता है, किसी से कुछ लेता नहीं अगर लिया तो, अल्प लेकर ही अत्यधिक देता है गिरिधर काई साधारण इंसान नहीं है। उनके ऊपर ईश्वर की विशेष कृपा है, इनके कार्यो व शारीरिक स्थितियों से यह आभास होता है कि उनका साक्षात्कार ईश्वर से ही हुआ होगा।

2.2 प्राथमिक शिक्षा

अन्तर्मुखता के उदय के परिणामस्वरूप आप में दिव्य मेधाशक्ति और अद्भुत स्मृति का भी उदय हुआ जिसके फलस्वरूप कठिन से कठिन श्लोक, कवित्त, सर्वया, छन्द आदि एक बार सुनने के बाद कण्ठस्थ हो जाते थे और दिव्य स्मरण शक्ति के फलस्वरूप मात्र पाँच वर्ष की आयु में ही आपको संपूर्ण श्री गीता कंठस्थ हो गयी और उसके बाद आठ वर्ष के शैशवकाल में ही आपने पूज्य पितामह श्रीयुत पंडित सूर्यबली मिश्र के प्रयास से गोस्वामी श्री तुलसीदास द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस क्रमबद्ध पंक्ति संख्या सहित कंठस्थ कर लिये थे। आपके पूज्य पितामह कृषि कार्य करते समय बालक गिरिधर को अपने साथ ले जाते और खेत की मेड में बिठाकर आपको एक बार में 50 दोहों की आवृत्ति करा देते थे। अब आप अधिकृत रूप में श्रीरामचरित मानसरोवर के राजहंस बनकर श्री सीताराम के नाम, रूप, लीला और ध्यान में तन्मय हो गये।

तदन्तर श्री अवध जानकी घाट के प्रवर्तक श्री 1008 श्री राधा बल्लभ शरण के परम कृपापात्र पंडित ईश्वरदास महाराज ने बालक गिरिधर को श्रीराम मंत्र की दीक्षा दी, आगे चलकर यही बालक गिरिधर युग पुरुष की कोटि में आकर जगदुरूरामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य के नाम से प्रख्यात हुए।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के ही प्राइमरी विद्यालय में प्रारम्भ हुई, अपनी छोटी बहन उमा के साथ विद्यालय में जाते और सारा दिन बैठकर विद्यालय के वातावरण का आनन्द लेते और फिर उमा के साथ ही घर वापस चले आते। उमा ही उन्हें विद्यालय से ले आने और ले जाने का श्रेय प्राप्त करती। इनका आपस में बड़ा स्नेह था। विद्यालय में पंडित मुरलीधर मिश्र शिक्षक थे और अपने काम से निवृत्त होकर गिरिधर को गीता का श्लोक याद करवाते थे। और लगभग 15 दिनों में ही इन्होंने सम्पूर्ण गीता कंठस्थ करके गुरूमुरलीधर मिश्र को सुनाई आपको अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए भी ले जाते थे।

अन्त्याक्षरी में विपक्षी को परास्त करना आपको भलीभांति आता था। आपकी स्मरण शक्ति प्रबल थी, अर्थात् आपने मात्र 60 दिनों में ही पूरी रामचरितमानस कंठस्थ कर ली थी। और सन् 1958 की रामनवमी को रामचरितमानस का मौखिक पाठ किया। अन्ततोगत्वा आपकी रूचि रामचरितमानस के पाठ और उसके मार्मिक प्रसंगों पर चर्चा करना और गांव के लोगों को सुनाना व उसके सार को बताना यही दैनिक कर्म हो गया और वे नियमपूर्वक सत्संग और राम चर्चा में ही लीन रहने लगे।

2.3 उच्च शिक्षा

वैष्णवोचित परंपरा की दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् स्थानीय आदर्श गौरीशंकर संस्कृत महाविद्यालय में 5 वर्ष तक पाणिनीय व्याकरण की शिक्षा सम्पन्न करके आप उच्च शिक्षा हेतु वाराणसी गये। संपूर्णानन्दसंस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी की शास्त्री एवं आचार्य की परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करके आपने अनेक स्वर्ण पदक प्राप्त किये इसी कालखण्ड में अखिलभारतीय संस्कृत अधिवेशन में व्याकरण-सांख्य न्याय वेदान्त-श्लोकान्त्याक्षरी और समस्यापूर्ति की असाधारण ज्ञान के फलस्वरूप पाँच पुरस्कार प्राप्त किये। उल्लेखनीय है कि पूज्य आचार्य चरणों ने अभिनवपाणिनी, व्याकरण विभागाध्यक्ष पू०पं० श्री रामप्रसाद त्रिपाठी (वाराणसी) से व्याकरण की भाष्यांत शिक्षा प्राप्त की। इतना ही नहीं इसी विश्व विद्यालय से "अध्यात्मरामायणे अपाणिनीय प्रयोगानांविमर्शः" विषय पर अनुसंधान करके (पी-एच0डी०) या विद्या वारिधि तथा अष्टाध्यायाः प्रतिसूत्रंशब्दबोध समीक्षणम्" पर शिक्षा जगत की सर्वोच्च उपाधि वाचस्पति (डीलिट०) प्राप्त की।

अर्थात् इस प्रकार के कार्यों द्वारा पूरे समाज को एक दिशा, दशा, तथा सम्बल प्रदान किया, कि जीवन में अगर आप ठान लें तो कुछ भी असंभव नहीं है।

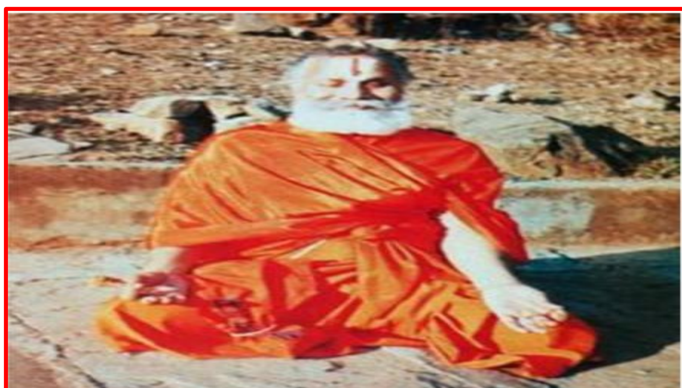
2.4 परिलब्धियाँ

संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की शास्त्री की परीक्षा सन् 1973 में प्रथम स्थान में प्राप्त कर **5 स्वर्ण पदक एवं एक रजत पदक** प्राप्त किया। वाकपटुता एवं शास्त्रीय प्रतिभा के धनी होने के नाते आचार्यश्री ने 1974 के अखिल भारतीय संस्कृत अधिवेशन में भी **पाँच पुरस्कार** प्राप्त किये एवं चल वैजयंती पुरस्कार प्राप्त किया। सन् 1975 में अखिल भारतीय वाद-विवाद प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त कर तत्कालीन राज्यपाल एम०चेन्ना रेड्डी से कुलाधिपति **स्वर्ण पदक** प्राप्त किया। जनवरी सन् 2002 में उत्तर प्रदेश सरकार का समाज

सेवा के क्षेत्र में दिया जाने वाला सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार **'भाऊरावदेवरस" सम्मान** प्राप्त किया एवं अप्रैल सन् 2003 में समाज सेवा में उत्कृष्ठ लेखन के क्षेत्र में दिया जाने वाला सर्वोच्च भारतीय पुरस्कार राष्ट्रपति पुरष्कार से विभूषित किया गया। जिसकी विशेषता यह है कि एक लाख रूपये हर वर्ष आजीवन भारत सरकार की ओर से प्राप्त होते रहेंगे। सन् 1976 की वाराणसी साधु बेला में संस्कृत महाविद्यालय में समायोजित शास्त्रार्थ आचार्य चरण के प्रतिभा का एक रोमांचक परिलक्षण सिद्ध हुआ इसमें आचार्य अन्तिम वर्ष के छात्र प्रत्युत्पन्नमति शास्त्रार्थ कुशल श्री गिरिधर मिश्र ने अधातु परिष्कार पर 50 विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को अपनी प्रज्ञा एवं शास्त्रीय युक्तियों से अभिभूत करके निरुत्तर करते हुए सिंह गर्जनपूर्वक तत्कालीन मूर्धन्य विद्वानों को परास्त किया था। पूज्य आचार्य श्री संस्कृतविश्वविद्यालय के व्याकरण विभागाध्यक्ष पं0 श्री राम प्रसाद त्रिपाठी से ही व्याकरण की गहनतम शिक्षा प्राप्त की।

2.5 विरक्ति दीक्षा

मानस की माधुरी एवं श्री भागवत के अनुशीलन में आचार्य श्री को पूर्व से ही श्री सीताराम का चरणानुरागी बना ही दिया था। अब १९७६ में गिरिधर मिश्र ने करपात्री महाराज को रामचरितमानस पर कथा सुनाई। स्वामी करपात्री ने उन्हें विवाह न करने, वीरव्रत धारण करके आजीवन ब्रह्मचारी रहने और किसी वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षा लेने का उपदेश दिया। गिरिधर मिश्र ने नवम्बर १९, १९८३ के कार्तिक पूर्णिमा के दिन रामानन्द सम्प्रदाय में श्री श्री १००८ श्री रामचरणदास महाराज फलाहारी से विरक्त दीक्षा ली। अब गिरिधर मिश्र रामभद्रदास नाम से आख्यात हुए।


चित्रकूट में मन्दाकिनी नदी के तट पर षाण्मासिक पयोव्रत के दौरान सुखासन और ध्यानमुद्रा में ध्यानस्थ जगद्गुरु रामभद्राचार्य

चित्र संख्या 2.1 रामभद्राचार्य पयोव्रत्त करते हुए

2.5.1 पयोव्रत

गिरिधर मिश्र ने गोस्वामी तुलसीदास विरचित दोहावली के निम्नलिखित पाँचवे दोहे के अनुसार १९७९ ई में चित्रकूट में छः महीनों तक मात्र दुग्ध और फलों का आहार लेते हुए अपना प्रथम षाण्मासिक पयोव्रत अनुष्ठान सम्पन्न किया।

पय अहार फल खाइ जपु राम नाम षट मास।

सकल सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास ॥

"केवल दूध और फलों का आहार लेते हुए छः महीने तक राम नाम जपो। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा करने से सारे सुन्दर मंगल और सिद्धियाँ करतलगत हो जाएँगी।,,

१९८३ ई में उन्होंने चित्रकूट की स्फटिक शिला के निकट अपना द्वितीय षाण्मासिक पयोव्रत अनुष्ठान सम्पन्न किया। यह पयोव्रत स्वामी रामभद्राचार्य के जीवन का एक नियमित व्रत बन गया है। २००२ ई में अपने षष्ठ षाण्मासिक पयोव्रत अनुष्ठान में उन्होंने श्रीभार्गवराघवीयम् नामक संस्कृत महाकाव्य की रचना की। वे अब भी तक नियमित रूप से षाण्मासिक पयोव्रत का अनुष्ठान करते रहते हैं, २०१०-२०११ में उन्होंने अपने नवम पयोव्रत का अनुष्ठान किया।

2.6 जगद्गुरू एव धर्मचक्रवर्ती उपाधि

सन् 1987 में पूज्यपाद आचार्यश्री ने अपने ईष्टदेव भगवान राघवेन्द्र सरकार की बिहार स्थली एवं कर्मभूमि श्री चित्रकूट में तुलसीपीठ की स्थापना की तभी से सन्तों महात्माओं और मनीषियों के द्वारा आप "श्री तुलसीपीठाधीश्वर" के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

इसी क्रम में 24 जून 1988 ई0 को काशीनगरी को तथा 01 अगस्त सन् 1995 ई0 को दिगम्बर अखाड़ा अयोध्या में अनेक सन्त, महन्त, विद्वान एवं श्री वैष्णों द्वारा आपको जगद्गुरू रामानन्दाचार्य के पद पर विधिवत अभिषिक्त किया गया उपाधियों के इसी क्रम में 1998 में हरिद्वार के महाकुम्भ के पावनपर्व पर पूज्यपाद जगद्गुरूको विश्व धर्मसंसद द्वारा 'धर्मचक्रवर्ती' के सर्वोच्च उपाधि से विभूषित किया गया।

तत्पश्चात 2001 ई० में भाऊराव देवरस पुरस्कार, लाल बहादुर शास्त्री केंद्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) नई दिल्ली द्वारा 2002 ई0 में महामहोपाध्याय, सन् 2003 में महामहिम राष्ट्रपति द्वारा महर्षि वादण पुरस्कार, 2005 ई0 में साहित्य अकादमी पुरस्कार,

तथा 2006 ई0 में रामकृष्ण जयदयाल डालमिया फाउण्डेशन द्वारा श्री वाणी अलंकार पुरस्कार प्राप्त हुए।

सत्य भी है-

"क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतानोपकरण"

श्री रामभक्ति एवं राष्ट्रभक्ति के विलक्षण उद्गाता विगत पाँच दशकों से पूज्यपाद जगद्गुरू सम्पूर्ण भारत तथा विश्व के अनेक देशों में श्री रामकथा की मंदाकिनी, श्री कृष्णकथा की कालिन्दी तथा अन्य वैदिक ग्रन्थों की सरस्वती से हिन्दूजन मानस के अभ्युदय एवं कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। पूज्यपाद, जगद्गुरूजी, आज भी अपने दिव्य प्रवचनों के माध्यम से भारत के वर्तमान धर्म विधान स्वरूप से दुःखी होकर भारतवर्ष को आदर्श रामराज युक्त देखने के लिए आशान्वित रहते हैं। यही कारण है कि "श्री राम ही राष्ट्र हैं एवं राष्ट्र ही श्रीराम हैं" का शंखनाद पूज्यपाद जगद्गुरू के प्रवचनों में सदैव गूँजता रहता है। भारत ही नहीं अपितु विदेशों में भी गुरू की भारतीय आर्ष ग्रन्थों में वर्णित सनातन धर्म सिद्धान्तों की तथा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की उदात्त आदर्शों की विलक्षण व्याख्याओं से प्रवासी भारतीयों के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा जागृत करने में सतत् प्रयत्नशील रहते हैं।

2.7 धार्मिक प्रवचन

जगद्गुरु रामभद्राचार्य

अक्टूबर २५, २००९ के दिन जगद्गुरु रामभद्राचार्य प्रवचन देते हुए

जन्म	गिरिधर मिश्र 14 जनवरी 1950 जौनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत
गुरु/शिक्षक	पण्डित ईश्वरदास महाराज
दर्शन	विशिष्टाद्वैत वेदान्त
खिताब/सम्मान	धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य, महाकवि, प्रस्थानत्रयीभाष्यकार, इत्यादि

चित्र संख्या 2.2 रामभद्राचार्य प्रवचन देते हुए

साहित्यिक कार्य	प्रस्थानत्रयी पर राघवकृपाभाष्य, श्रीभार्गवराघवीयम्, भृंगदूतम्, गीतरामायणम्, श्रीसीतारामसुप्रभातम्, श्रीसीतारामकेलिकौमुदी, अष्टावक्र, इत्यादि
कथन	मानवता ही मेरा मन्दिर मैं हूँ इसका एक पुजारी ॥ हैं विकलांग महेश्वर मेरे मैं हूँ इनका कृपाभिखारी ॥[1]
धर्म	हिन्दू
दर्शन	विशिष्टाद्वैत वेदान्त

चित्र संख्या 2.3 रामभद्राचार्य के साहित्यिक कार्य

2.8 स्वर्णिम यात्रा

जगद्गुरू ने अपने कर्म एवं प्रतिभा से पूरे देश को गौरवान्वित किया, और विशेष रूपों में उन विकलांगछात्रों के लिए प्रेरणास्रोत हैं, जो अंधे, शारीरिक रूप से अक्षम, एवं अन्य समस्याओं से ग्रसित है। इनकी प्रतिभा का दृश्य तब देदीप्यमान हुआ, जब इन्होंने प्रथम बार शास्त्री द्वितीय वर्ष में प्रथम स्थान लाकर स्वर्ण पदक प्राप्त किया, और अब यह सिलसिला चल पड़ा और इन्होंने स्वर्णपदक के साथ-साथ छात्रवृत्ति भी पानी शुरू कर दी और सहज स्वावलंबी जीवन व्यतीत करने लगे और पुरस्कारों का सिलसिला चलता ही रहा।

जगद्गुरू ने जिन परिस्थितियों का सामना अपने जीवन काल में किया, उसी झंझावातों का ही परिणाम है कि आज चित्रकूट विकलांग विश्वविद्यालय, अपना प्रवेश द्वार सभी विकलांगों के लिए खोल दिया है और जिसके आजीवन कुलाधिपति हमारे पूज्य गुरूदेव ही नामित हैं।

तृतीय अध्याय

साहित्यिक सर्जना

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य (जगद्गुरु रामभद्राचार्य अथवा स्वामी रामभद्राचार्य के रूप में अधिक प्रसिद्ध) चित्रकूट धाम, भारत के एक हिंदू धार्मिकनेता, शिक्षाविद्, संस्कृतविद्वान, बहुभाषाविद, कवि, लेखक, टीकाकार, दार्शनिक, संगीतकार, गायक, नाटककार और कथाकलाकार हैं। उनकी रचनाओं में कविताएँ, नाटक, शोध-निबंध, टीकाएँ, प्रवचन और अपने ग्रंथों पर स्वयं सृजित संगीतबद्ध प्रस्तुतियाँ सम्मिलित हैं। वे ९० से अधिक साहित्यिक कृतियों की रचना कर चुके हैं, जिनमें प्रकाशित पुस्तकें और अप्रकाशित पांडुलिपियां, चार महाकाव्य, तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस पर एक हिंदी भाष्य,अष्टाध्यायी पर पद्यरूप में संस्कृत भाष्य और प्रस्थानत्रयी शास्त्रों पर संस्कृत टीकाएँ शामिल हैं। उनकी रचनाओं के अनेक ऑडियो और वीडियो भी जारी हो चुके हैं। वह संस्कृत, हिंदी, अवधी, मैथिली और कई अन्य भाषाओं में लिखते हैं।

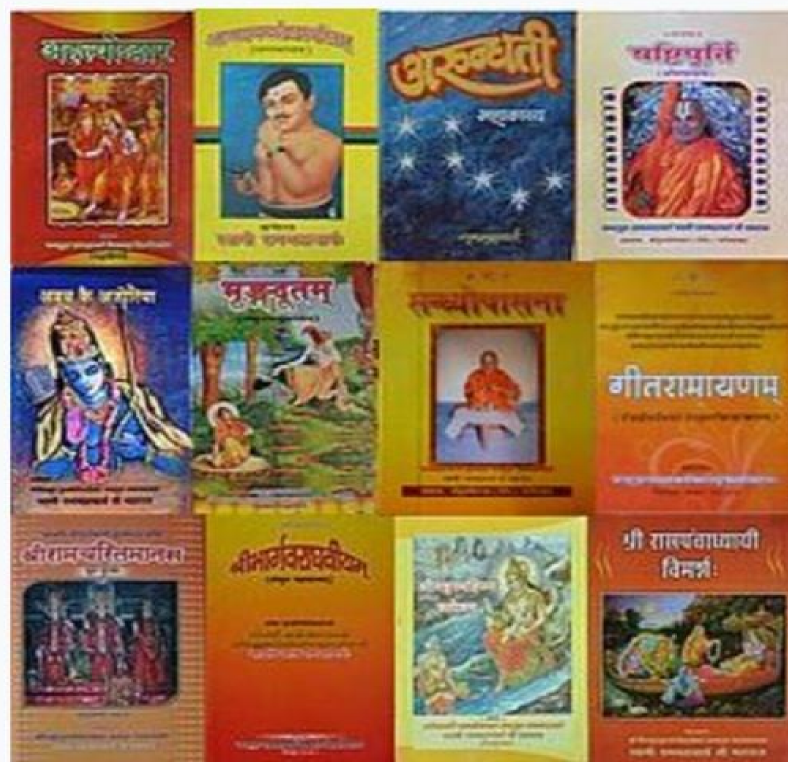
3.1 अनुपम कृतित्व

अत्यधिक प्रसन्नता का विषय यह भी है कि पूज्यपाद, जगदगुरु के व्यक्तित्व के साथ ही साथ कृतित्व भी इतना विलक्षण एवं गंभीर है, कि समस्त विद्वानों के लिए औषधि और जिज्ञासु साधकों के लिए पाथेय सिद्ध होता है। पूज्य आचार्य श्री ने संस्कृत, गुजराती, उड़िया, मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, आदि अनेक भाषाओं में आसु कविता के माध्यम से श्रीराम कथा, श्री कृष्ण कथा एवं अनेक दुर्लभ पौराणिक प्रसंगों को सुन्दर एवं सरस शैली में छन्दोबद्ध किया है।

श्रीभार्गवराघवीयम् उनकी अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है, जिसके लिए उन्हें संस्कृत साहित्य अकादमी पुरस्कार समेत अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। उन्हें महाकवि तथा कविकुलरत्न आदि अनेक साहित्यिक उपाधियों से भी अलंकृत किया जा चुका है।

उनकी प्रमुख साहित्यिक और संगीतमय रचनाएँ, शैलियों के आधार पर विभिन्न समूहों में, नीचे सूचीबद्ध हैं।

रामभद्राचार्य ग्रन्थसूची



रामभद्राचार्य के कुछ ग्रन्थों के आवरण पृष्ठ

Releases		
कविताएं	✓	२८
संगीत	✓	५
टीकाएँ	✓	१९
समालोचनाएँ	✓	६
प्रवचन	✓	९

संदर्भ और पादटीका

चित्र संख्या 3.4 रामभद्राचार्य ग्रंथ सूची

उल्लेखनीय है कि गुरू की पराऋतम्भरा प्रज्ञा से अब तक शताधिक ग्रंथों की सर्जना हो चुकी है। जिनमें कुछ प्रकाशित पुस्तकों का विवरण निम्न प्रकार है-

3.1.1 महाकाव्य

1. श्रीभार्गवराघवीयम् (संस्कृत महाकाव्य)।

2. गीतरामायण (संस्कृत महाकाव्य)।

3. अरुन्धती महाकाव्य (हिन्दी महाकाव्य)।

4. अष्टावक्र महाकाव्य (हिन्दी महाकाव्य)।

3.1.2 खण्डकाव्य

1. आजाद चन्द्रशेखर चरित् (संस्कृत काव्य)।

2. लघुर गुबरम् (संस्कृत काव्य)।

3. सरयू लहरी (संस्कृत काव्य)।

4. काका विदुर (हिन्दी काव्य)।

5. माँ शबरी (हिन्दी खण्ड काव्य)।

3.1.3 नाटक काव्य

1. श्री राघवाभ्युदयम् एकांकी नाटक (संस्कृत)।

2. उत्साह (हिन्दी नाटक)।

3.1.4 पत्र काव्य

1. राघवगीत गुंजन (हिन्दी गीतिकाव्य)।

2. भक्तिगीत सुधा (हिन्दी गीतकाव्य)।

3.1.5 शतक काव्य

1. श्री रामभक्ति सर्वस्वम् (शतककाव्य एवं स्तोत्रकाव्य)

2. आर्यशतकम् (संस्कृत अप्रकाशित)

3. चण्डीशतकम् (संस्कृत अप्रकाशित)

4. गणपतिशतकम् (संस्कृत अप्रकाशित)

5. श्रीराघव चरण चिह्नशतकम् (संस्कृत अप्रकाशित)

3.1.6 स्तोत्र काव्य

1. श्री गंगामहिम्नः स्तोत्रम् (संस्कृत स्तोत्रकाव्य)

2. श्री जानकी कृपा कटाक्ष स्तोत्रम् (संस्कृत स्तोत्रकाव्य)

3.श्री राम बल्लभ स्तोत्रम् (संस्कृत स्तोत्रकाव्य)

4. श्री चित्रकूट विहार्याष्टकम् (संस्कृत स्तोत्रकाव्य)

5. भक्तिसार सर्वत्रम् (संस्कृत स्तोत्रकाव्य)

6. श्री राघव भावदर्शनम् (संस्कृत स्तात्रकाव्य)

3.1.7 दर्शन एवं भाष्य ग्रंथ

1. श्रीराम स्तवराज स्तोत्र श्री राघव कृपा भाष्यम्।

2. ब्रह्मसूत्रम श्री राघव कृपा भाष्यम्।

3. श्री मद्भगवद्गीतामु श्री राघव कृपा भाष्यम्।

4. कडगोपनिषदि श्री राघव कृपा भाष्यम्।

5. केनोपनिषदि श्री राघव कृपा भाष्यम्।

6. माण्क्योपनिषदि श्री राघव कृपा भाष्यम्।

7.इंशावास्योपनिषदि श्री राघव कृपा भाष्यम्।

8. प्रश्नोपनिषदि श्री राघव कृपा भाष्यम्।

9. तैलरीयोपनिषदि श्री राघव कृपा भाष्यम्।

10.ऐतरेयोपनिषदि श्री राघव कृपा भाष्यम्।

11. श्वेतश्वेतरापनिषदि श्री राघव कृपा भाष्यम्।

12. छान्दोग्योपनिषदि श्री राघव कृपा भाष्यम्।

13. बृहदारण्यकोपनिषदि श्री राघव कृपा भाष्यम्।

14. श्री नारदरभक्तिसूत्रेषु श्री राघव कृपा भाष्यम्।

15. श्रीगौता तात्पर्य दार्शनिक हिन्दी ग्रंथ)

3.1.8 शोध ग्रन्थ

1. अध्यात्मरामायणे अपाणनीय प्रयोगाणां विमर्श:।

2. पाणिनीयाष्टाध्याययाः प्रतिसूत्रंशाब्दबोधसमीक्षणं।

पूज्यपाद जगद्गुरु द्वारा प्रणीत (संस्कृत - हिन्दी) के ऐसे और अनेक ग्रंथों से जहाँ एक ओर धर्म प्राण जनता को लोकोत्तर आनन्दाब्धि में अवगाहन का सौभाग्य प्राप्त होता है, वहीं दूसरी ओर संस्कृत और संस्कृति के अनेक शोधार्थियों को तत्व एवं शास्त्रचिंतन की गम्भीर एवं समुचित दिशा प्राप्त होती है।

जनता के साथ-साथ शासक वर्ग भी पूज्यपाद जगद्गुरु के उस अनुपम कृतित्व से उपकृत है। सन् 1996 ई0 में तत्कालीन महामहिम राष्ट्रपति डा0 शंकरदयाल शर्मा द्वारा अरुन्धती महाकाव्य का विमोचन सम्पन्न हुआ।

भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री माननीय अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 1998 ई0 में ऐतिहासिक एवं विशालकाय ग्रंथ प्रस्थानत्रयीकाव्य का अक्टूबर 2002 ई० में 21वीं शताब्दी के प्रथम संस्कृत महाकाव्य (श्री भार्गवराघवीयम्) का लोकार्पण उल्लेखनीय है इन भव्य

समारोहों में महामहिम राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री दोनों ने ही पूज्यवाद जगद्गुरुके प्रति सम्पूर्ण राष्ट्र की ओर से एवं व्यक्तिगत रूप से कृतज्ञता ज्ञापित की है।

उल्लेखनीय है कि पूज्य जगद्गुरू ने विकलांगता के कालकूट को स्वयं पिया है। उससे अन्य भाई-बहन को बचाने के लिए इन्होंने विश्व के प्रथम (जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय) चित्रकूट की स्थापना 2001ई0 में की है। विश्वविद्यालय शासन ने इन्हीं को जीवनपर्यन्त कुलाधिपति नियुक्त किया है । सभी प्रकार के विकलांगों को पूर्ण शिक्षित बनाने के लिए इस विश्वविद्यालय में निःशुल्क सेवा का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। विकलांगों को आत्मनिर्भर बनाने का सपना संजोने वाले पूज्य जगद्गुरूका यह उद्घोष बड़ा ही मार्मिक है।

मानवता ही मेरा मंदिर, मै हूँ इसका एक पुजारी।

है विकलांग महेश्वर मेरे, मै हूँ इनका कृपा भिखारी।।

इस प्रकार हम कह सकते है कि विश्व के असाधारण ज्योतिपुंज लोकोत्तर प्रतिभा के धनी प्रगाढ पांडित्य के निदर्शन सरस एवं सरल व्यक्तित्व के साक्षात स्वरूप आर्य परंपरा के दुर्लभ विभूतियों के मणिमाला में सुमेरू की भाँति महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में विख्यात पूज्य जगद्गुरु मानवमात्र का कल्याण साधन करके जहाँ अपने जगद्गुरुत्व के प्रति जागरूक है, वहीं भारत राष्ट्र को पुन जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए मन वाणी और कर्म से पूर्णतया समर्पित भी हैं।

निष्कर्ष

महाकवि के समस्त क्षेत्रों में की गयी साहित्यिक रचनाओं के दर्शन एवं अध्ययनोपरान्त यह ज्ञात हुआ कि ये कोई साधारण मानव नहीं है, बल्कि अतिमानसिक महामानव है, जो विश्व के कल्याण के लिए ही निरंतर तन-मन-धन से सादर समर्पित है और साहित्य की झोली में जो इन्होंने, काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य नाटककाव्य, पत्रकाव्य, शतककाव्य, स्तोत्रकाव्य, दर्शन एवं भाष्य ग्रंथ तथा शोधग्रंथ इत्यादि रूपी पुष्प डाली है, उसके लिए साहित्य समाज के साथ ही साथ, सम्पूर्ण राष्ट्र इनको कृतज्ञता ज्ञापित करता है व इनके दीर्घायु होने की कामना करता है।

3.2 काव्य पाटव

अर्थ- काव्यपटुता या काव्य कुशलता

किसी कवि की काव्यपटुता का मूल्यांकन हम उसके शास्त्रीय ज्ञान अथवा स्वतंत्र विवेक के आधार पर करते हैं । प्रत्येक विद्वान कवि काव्यशास्त्र का अच्छा ज्ञाता होता है। और वह उन सिद्धान्तों को अपने काव्य में उतारना भी चाहता है। किन्तु जिस प्रकार शब्द कोश पढ़कर क्लिष्ट शब्दों का काव्य में प्रयोग स्वाभाविक नही हो सकता उन शब्दों को आत्मसात करते हुए अपने संस्कार में ढालना ही होता है, उसी प्रकार जब तक काव्य सिद्धान्त कवि को आत्मसात नहीं हो जाते, उसके संस्कार में ढल नहीं जाते, तब तक उनका प्रयोग कृत्रिम या अस्वाभाविक लगता है। काव्य सिद्धान्त भी तो श्रेष्ठ काव्यों को लक्ष्य करके हो बनाये गये हैं। यहाँ नासिख (शायर) की पंक्तियों सहज ही स्मरण हो जाती हैं-

"इश्क को दिल में दे जगह नासिख, इल्म से शायरी नहीं आती।"

काव्य का शास्त्रीय पक्ष उसकी वाह्य संरचना का निर्माण करता है, अर्थात् उसका भाषा पक्ष होता है। काव्य की आत्मा तो भाव ही है। भाव अर्थात् रस अर्थात् प्रेम।

इसीलिए गोस्वामी कहते हैं

"का भाषा का संसकृत, प्रेम चाहिए साँचि।

काम जू आवै कामरी, का लै करिअ कुमाच।।

यहाँ गोस्वामी का संस्कृत से अभिप्राय उस शास्त्रीय और संस्कारशील काव्य भाषा से है, जिसका अपना एक समृद्ध काव्यशास्त्र है और महान काव्य परंपरा भी उसकी तुलना में अवधी हिन्दी कहाँ टिक सकती थी, उसमें वैसे समृद्ध संस्कार कहाँ थे न उसकी उतनी लम्बी काव्य परंपरा थी, न ही उसका अपना समृद्ध काव्यशास्त्र ही किन्तु वो जन-जन में रची भाषा अवश्य थी और उसमें भाव सम्प्रेषण की संभावनाएं संस्कृत से कम नहीं थी, उस गोस्वामी की काव्य पटता थी कि उन्होंने उसे अपने महान काव्य की भाषा बनाई, और इसी भाषा के बल पर उनकी ये रामकथा जन-जन की रामकथा हो गयी गोस्वामी को संस्कृत तथा तत्कालीन अन्य बोलियों का महान ज्ञान था, और उन्होंने अपनी रचनाओं में इसका समावेश भी किया। संभवत: उनकी इसी काव्यपटुता ने लोककवि ही नहीं लोक नायक तक बना दिया।

काव्यशास्त्र, भाषा, विचार तथा भक्ति पद्धति की उनकी स्थापनाएं मात्र हिन्दी के लिए न केवल मानक बनी हुई हैं, अपितु ऐसी संजीवनी का काम कर रही है, जो हिन्दी साहित्य को युगों-युगों तक अमर रखने में सक्षम हैं। वे कोई रीतिबद्ध या रीतिसिद्ध महान कवि कहलाते हैं।

यहाँ गोस्वामी अपनी विनम्रता को प्रकट करते हैं लेकिन ये कहना नहीं भूलते की हमारी रुचि बड़ी ऊँची है, मति- भले न हो

'मति' का तात्पर्य यहाँ कवित विवेक से है।' ।

हमारे कवि रामभद्राचार्यकी काव्य पटुता का भी मूल्यांकन यदि इन्हीं बिन्दुओं पर किया जाय तो समीचीन होगा। रामभद्राचार्य महान विद्वान हैं, बहुभाषापटु और बहुज्ञ हैं, वे जगत के जितने अनुभवी हैं, उससे अधिक आत्मबोध से युक्त भी हैं। इनमें संस्कृत भाषा, व्याकरण, और साहित्य का महान ज्ञान भी समाहित है। इनकी प्रतिभा अतिउर्वर है, नित्य निरंतर नवीन से नवीनतम् होने की इनकी अभिलाषा (रुचि) बढ़ती ही जा रही है। ये महान वक्ता और भावुक हैं, अभिनय इनके वक्तृत्व में सहज ही प्रकट होता रहता है। आख्यान को व्याख्यान बनाने में ये महारथी हैं, इनके व्याख्यानों में संगीत का स्वाभाविक समावेश रहता है। वर्णन को चित्रात्मक (विम्बात्मक) बनाकर प्रस्तुत करना, तथा सजीव मूर्तिमत्ता दे देना उनकी सहज कुशलता है और व्याख्यानों का महान प्रासाद निर्मित करना (स्थापत्य का रूप) दे देना भी इनकी स्वाभाविक कला है। और ये सारे गुण अपनी पूरी कुशलता के साथ इनके काव्य में प्रकट हुए हैं।

इन्हीं तत्वों के आधार पर हम कवि की काव्य पटुता की समीक्षा कर रहे हैं ।

वक्तृत्व कला का उदाहरण इस प्रकार है-

बोला बंदी विहँस यहाँ विकलांग कहाँ से आया।

कौन अष्टावक्र बाल को राजसभा में लाया।।

जो न संभाल रहा तन को वह क्या शास्त्रार्थ करेगा|

लघु पिपीलिका का शावक कैसे वारीश तरेगा।।'

अष्टावक्र =

आश्रमचार विदित ब्राह्मण के भवन गिनाए।

चारवर्ण निर्वहन यज्ञ का कर मन भाए।

चार दिशाएँ हस्व दीर्घ प्लुत हलउच्चारण।

चार गिरा के चार भेद भववियन्निवारण ।।

और गीतात्मकता के उदाहरण स्वरूप कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार प्रस्तुत है-

क्रान्ति जग सङ्क्रान्तिमय हो, शान्ति भी संक्रान्तिपूर्वा।

क्रान्तिविरहित शान्तिलयहो, क्रान्ति जग सङ्क्रान्तिमय हो।

शान्ति का प्राचीन नारा तज अकर्मठ का सहारा।

विश्वनभ में नवल तारा क्रान्तिमय अनुपम उदय हो।।'

3.3 महाकवि की चित्रात्मकता का उदाहरण

नील तमाल से श्याम शरीर पे पाट पीतांबर सोह रहा था।

मरकत शैल पे बाल दिनेश सा अष्टावक्र मोह रहा था।

भाल पे कंचनापीड विराजित विश्व की पीड़ा विपोह रहा था।

गिरिधर' की गिरा देवगवीमय नव्य सुगव्य को जोह रहा था।

महाकवि की स्थापत्य कला का उदाहरण इस प्रकार है

अब कहोल ने कुटी बनाई नीरव निर्जन कानन में।

किया निवास वही गृहस्थ ने भार्या सहित मुदित मन में।

वास्तु देवता का कर पूजन अग्निहोत्र को कर स्थापित।

रहने लगे गृहस्थ धर्मरत कर दोषों को विस्थापित।।'

3.4 कुशल कवि के रूप में महाकवि रामभद्राचार्य जी

हमने महाकवि रामभद्राचार्य की काव्य कुशलता का संक्षिप्त अध्ययन किया, यहाँ पुनः कहना चाहूँगा कि हमारे कवि सहज स्फूर्त कारयत्री प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। यद्यपि ये संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान हैं। व्याकरण और धर्मशास्त्रों का इनका अतिविशिष्ट अध्ययन है, इस अध्ययन ने उनकी काव्यभाषा और चिन्तन पक्ष को अति समृद्ध किया है। लेकिन इनके हृदय के अनाविल ने इनके काव्य में रस की सात्विक धारा प्रवाहित की है। हमारे कवि की रस योजना चिन्मय है, क्योंकि ये अनन्त शोभाकान्त के निरन्तर दर्शक हैं। अपने कष्ट सहिष्णु, धैर्यवान, अनुशासित, सत्यपोषक और शुद्ध भक्ति के आचरण ने जहाँ इनके जीवन को उदात्त स्तर पर स्थापित किया है। वहीं इनके काव्य को भी आदर्श ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं।

इनके काव्य का फलक यद्यपि धर्म अध्यात्म नैतिकता पर आधारित है, तथापि जीवन की विराटता की इनकी अनुभूति ने इनके काव्य को भी बहुआयामी बनाया है। एक ओर ये मेले-त्यौहार, तथा घरेलू संस्कारों पर आधारित श्रेष्ठ लोकगीतकार हैं, श्रेष्ठ कीर्तनकार हैं, वहीं ये श्रेष्ठ प्रबंधकार भी हैं।

उदाहरण-

धौः क्रान्तिः नभः क्रान्तिः भाग्यभूमाभूमिक्रान्तिः।

परम पावन आपः क्रान्तिः ओषधि:संक्रान्तिमय हो।

नववनस्पतिवृन्दक्रान्तिः विश्वदेवस्पन्द क्रान्ति:।

महाकाव्यच्छन्दक्रान्तिः ब्रह्मभव संङ्क्रान्तिमय हो॥'

मुक्तकों की स्वतंत्र लोकानुभूति ने इनके प्रबन्धों में स्वाभाविक संजीवनी का काम किया है। इनके प्रबन्धों को खण्ड काव्य और महाकाव्य की श्रेणियों में रखा गया है। इनके संस्कृत खण्ड खण्डकाव्यों में (1) आजाद चंद्र शरस चरित (2) लधुर गुवरम् (3) सरयू लहरी तथा हिन्दी में (4) काका विदूर (5) और माँ शबरी प्रमुख हैं। इनके महाकाव्यों में संस्कृत में- (1) भार्गवराघवीयम् तथा हिन्दी में (अ) अरुन्धती महाकाव्य (व) अष्टावक्र महाकाव्य ही प्रमुख हैं।

इनकी प्रबन्धकृतियों की विषय-वस्तु प्राय: पौराणिक या ऐतिहासिक है, शास्त्रीय दृष्टि से ऐसा होना स्वाभाविक भी है, इनके तीन महाकाव्यों भार्गवराघवीयम् (संस्कृत महाकाव्य) अरुन्धती (हिन्दी महाकाव्य) अष्टावक्र (हिन्दी महाकाव्य) का इनके जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है इनकी रामकथा के प्रेम ने जहाँ इनको भार्गवराघवीयम् को प्रेरित किया वहीं इनके वशिष्ठ गोत्र ने अरून्धती तथा इनकी विकलांगता ने अष्टावक्र महाकाव्य की रचना की प्रेरक भूमियाँ तैयार की। एक की प्रेरणा भक्ति प्रधान है, दूसरी गात्र प्रधान है, तीसरी की निजीवनानुभूति प्रधान है । तीनों ही महाकाव्यों में इनकी भक्ति, चिन्तन, नैतिकता, सहिष्णुता और अनुशासन जैसे-महान जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई।

3.5 आशु कवि के रूप में प्रतिष्ठा

विद्यार्थी जीवन से ही इनमें काव्य प्रतिभा का विकास देखने को मिलने लगा, विद्यालयी एवं विश्वविद्यालयीय शिक्षा प्राप्त करते हुए अनेक अवसरों पर सम्पन्न होने वाली आसु कविता प्रतियोगिताओं में आपने सर्वत्र प्रथम स्थान प्राप्त किया। दिल्ली में सम्पन्न हुई अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता में आप तत्काल कुछ श्लोक रचना कर सुना देते, और ये पूछने पर की श्लोक किस रचना से लिया गया है, गिरिधर रामायणे कहकर प्रश्नकर्ता को निरूत्तर कर देते। उनकी ये आशुरचनाएं मात्र तुकबन्दी ही नहीं होती थी। इनमें विचारों और भावों का सुन्दर समावेश भी रहता था। किसी शब्द वाक्यांश अथवा समस्या पर आशु रचना की प्रवृत्ति संस्कृत में समृद्ध रही है। हिन्दी में भी इसे विलक्षण प्रतिभा का पर्याय माना जाता रहा है। किन्तु अन्त्याक्षरी जैसी प्रतियोगिता में उपयुक्त छंद प्राप्त न होने पर तत्काल छंद रचते हुए सुनाते जाना कुछ अति विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्नों द्वारा ही सम्भव है। स्वामी ऐसे ही विशिष्ट महाकवि हैं।

इनकी समस्यापूर्ति प्रतियोगिता का कुछ उदाहरण हम यहां दे रहे है।

प्रश्न- "हिमालयो वा महिमालयो वा"

उत्तर- भवालयो वा विभवालयो वा, शिवालयो वापि शिवालयोवा। सुरालयो वा श्वसुरालयो वा, हिमालयो वा महिमालयो वा।।'

प्रश्न- "सत्यमूर्ते क्व सत्यम्"

उत्तर- मायाचारा व्रततनुभृताम् पापराजद्विचारे।

मिथ्याभूते कुटिलनिकरैर्ऱ्धिताधो ह्यसत्ये।

संसारेऽस्मिन् कलिमलमये घोरकान्तार तुल्ये।

रामं त्यक्त्वा विषम विपिने सत्यमूर्ते क्वसत्यम्॥'

इस प्रकार इन्होंने समस्या पूर्ति कर सबको प्रसन्न कर दिया तथा प्रतियोगिता में प्रथम स्थान भी प्राप्त किया।

बाल्यकाल में महाकवि द्वारा रचित दोहा

तजि कुसंग 'गिरिधर' गहहू, चरणशरण ब्रजराज।

बचा न पाए पंचपति, द्रुपद-सुता की लाज॥

3.6 महाकाव्य का अर्थ

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के प्रमुख रूप से दो भेद हैं – दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य | शैली के आधार पर श्रव्य काव्य के तीन भेद माने गए हैं – पद्य, गद्य और चंपू | पद्य के पुनः दो भेद हैं – प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य | प्रबंध काव्य के भी दो भेद हैं – महाकाव्य और खंडकाव्य |

3.6.1 अरुन्धती (महाकाव्य)

काव्य के अनुप्रवेश में कवि ने खड़ी बोली में रचित अपने सर्वप्रथम महाकाव्य में अरुन्धती को वर्ण्यविषय बनाने का कारण बताया है। उनके अनुसार वसिष्ठ गोत्र में जन्म लेने के कारण अरुन्धती के प्रति उनकी आस्था स्वाभाविक है। उनके कथनानुसार अरुन्धती के अनवद्य, प्रेरणादायी और अनुकरणीय चरित्र में भारतीय संस्कृति, समाज, धर्म, राष्ट्र और वैदिक दर्शन के बहुमूल्य तत्त्व निहित हैं। अपि च, उनकी मान्यतानुसार अग्निहोत्र की परम्परा का पूर्णरूपेण परिपोषण अरुन्धती और वसिष्ठ के द्वारा ही हुआ है। सप्तर्षियों के साथ केवल वसिष्ठपत्नी अरुन्धती पूजा की अधिकारिणी हैं, यह सम्मान और किसी भी ऋषिपत्नी को प्राप्त नहीं हुआ है।

महाकाव्य की अधिकांश कथाएँ विभिन्न हिन्दू ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। कुछ अंश कवि की मौलिक उद्भावनाएँ हैं। अरुन्धती के जन्म की कथा शिव पुराण तथा श्रीमद्भागवत में

वर्णित है, किन्तु महाकाव्य श्रीमद्भागवत के अनुसार उनकी उत्पत्ति की कथा प्रस्तुत करता है। ब्रह्मा द्वारा अरुन्धती को आदेश का प्रसंग श्रीरामचरितमानस के उत्तरकाण्ड से लिया गया है। विश्वामित्र एवं वशिष्ठ के मध्य शत्रुता वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड पर आधारित है। शक्ति एवं पाराशर का जन्म महाभारत तथा विविध ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध है। महाकाव्य की अन्तिम घटनाएँ वाल्मीकि रामायण, तुलसीकृत रामचरितमानस और विनयपत्रिका पर आधारित हैं।

अरुन्धती हिन्दी भाषा का एक महाकाव्य है, जिसकी रचना जगद्गुरु रामभद्राचार्य (१९५०–) ने १९९४ में की थी। यह महाकाव्य १५ सर्गों और १२७९ पदों में विरचित है। महाकाव्य की कथावस्तु ऋषिदम्पती अरुन्धती और वसिष्ठ का जीवनचरित्र है, जोकि विविध हिन्दू धर्मग्रंथों में वर्णित है। महाकवि के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु का मानव की मनोवैज्ञानिक विकास परम्परा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। महाकाव्य की एक प्रति का प्रकाशन श्री राघव साहित्य प्रकाशन निधि, हरिद्वार, उत्तर प्रदेश द्वारा १९९९४ में किया गया था। पुस्तक का विमोचन तत्कालीन भारत के राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा द्वारा जुलाई ७, १९९४ के दिन किया गया था।

अरुन्धती महाकाव्य (प्रथम संस्करण) का आवरण पृष्ठ

लेखक	जगद्गुरु रामभद्राचार्य
मूल शीर्षक	*अरुन्धती*
देश	भारत
भाषा	हिन्दी
प्रकार	महाकाव्य
प्रकाशक	श्री राघव साहित्य प्रकाशन निधि, हरिद्वार
प्रकाशन तिथि	१९९४
मीडिया प्रकार	मुद्रित (सजिल्द)
पृष्ठ	२३२ पृष्ठ *(प्रथम संस्करण)*

चित्र संख्या 3.5 अरुन्धती महाकाव्य

निष्कर्ष-

अरुन्धती ऋषि कर्दम और देवहूति की आठवीं पुत्री हैं तथा उनका विवाह ब्रह्मा के आठवें पुत्र वशिष्ठ के साथ सम्पन्न होता है। ब्रह्मा दम्पति को आश्वासन देते हैं कि उन्हें भगवान राम का दर्शन प्राप्त होगा। ऋषि दम्पति राम की प्रतीक्षा में अनेकों वर्ष व्यतीत करते हैं। गाधि राजा का पुत्र विश्वरथ वशिष्ठ से दिव्य गौ कामधेनु को छिनने का प्रयास करता है, परन्तु स्वयं को वशिष्ठ के ब्रह्मदण्ड का सामना करने में असमर्थ पाता है। विश्वरथ घोर तप करने के पश्चात ऋषि विश्वामित्र बनते हैं। प्रतिशोध की अग्नि में जल रहे विश्वामित्र अरुन्धती एवं वशिष्ठ के समस्त सौ पुत्रों को मृत्यु का शाप दे देते हैं। दम्पति की क्षमा से शक्ति नामक एक पुत्र उत्पन्न होता है, किन्तु विश्वामित्र उसे भी एक राक्षस द्वारा मरवा देते हैं। तब अरुन्धती और वशिष्ठ अपने पौत्र पाराशर पर आश्रम की देखभाल का दायित्व सौंपकर वानप्रस्थ आश्रम व्यतीत करने के लिए चले जाते हैं।

परन्तु ब्रह्मा उन्हें पुनः आश्वस्त करते हुए कि वे केवल गृहस्थ दम्पति के रूप में रहते हुए ही राम के दर्शन कर सकेंगे, उन्हें पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का आदेश देते हैं। दम्पति अयोध्या के समीप एक आश्रम में निवास करना प्रारम्भ कर देते हैं। भगवान राम के जन्म के समय ही, उनके यहाँ भी सुयज्ञ नामक एक पुत्र का जन्म होता है। भगवान राम और सुयज्ञ एक साथ अरुन्धती एवं वशिष्ठ के आश्रम में अध्ययन करते हैं। मिथिला में सीता और राम के विवाह के पश्चात, जब नवविवाहित दम्पति अयोध्या आते हैं, तो अरुन्धती प्रथम बार सीता से मिलती हैं। सीता और राम चौदह वर्ष वनवास में व्यतीत करते हैं। वनवास के उपरान्त जब वे घर लौटते हैं, तो वे प्रथम बार भोजन करते हैं, जो कि स्वयं अरुन्धती अपने हाथों से बनाती हैं। इसी प्रसंग के साथ महाकाव्य का समापन होता है

3.6.2 अष्टावक्र महाकाव्य और रामभद्राचार्य का निजीवन-

अष्टावक्र (२०१०) जगद्गुरु रामभद्राचार्य (१९५०–) द्वारा २००९ में रचित एक हिन्दी महाकाव्य है। इस महाकाव्य में १०८-१०८ पदों के आठ सर्ग हैं और इस प्रकार कुल ८६४ पद हैं। महाकाव्य ऋषि अष्टावक्र की कथा प्रस्तुत करता है, जो कि रामायण और महाभारत आदि हिन्दू ग्रंथों में उपलब्ध है। महाकाव्य की एक प्रति का प्रकाशन जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तर प्रदेश द्वारा किया गया था। पुस्तक का विमोचन जनवरी १४, २०१० को कवि के षष्टिपूर्ति महोत्सव के दिन किया गया।

अष्टावक्र
महाकाव्य
प्रणेता
स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज

अष्टावक्र महाकाव्य (प्रथम संस्करण) का आवरण पृष्ठ

लेखक	जगद्गुरु रामभद्राचार्य
मूल शीर्षक	*अष्टावक्र महाकाव्य*
देश	भारत
भाषा	हिन्दी
प्रकार	महाकाव्य
प्रकाशक	जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
प्रकाशन तिथि	जनवरी १४, २०१०
मीडिया प्रकार	मुद्रित (सजिल्द)
पृष्ठ	२२३ पृष्ठ *(प्रथम संस्करण)*

चित्र संख्या 3.6 अष्टावक्र महाकाव्य

किसी भी महाकवि का निजीवन और उसके अनुभव उसके काव्य नायक के द्वारा प्रकट अवश्य होते हैं। ये कोई आवश्यक नहीं है कि कवि का जीवन उसके चरित नायक के जीवन से एकदम मेल खाता ही हो किन्तु, कवि की अनुभूतियाँ अवश्य ही चरित नायक में प्रतिफलित होती हैं। रामभद्राचार्य 2 माह से ही दृष्टि विकलांग रहे हैं विकलांगों की कठिनाइयों का उन्हें मिलने वाली उपेक्षाओं ओर स्वाभिमानों को ललकारने वाली कृपाओं का उन्हें बड़ा गहन

अनुभव रहा है। इनकी व्यापक अनुभूतियों ने जब इन्हें कुशल कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया और इन्होंने जब विभिन्न विषयों पर अपनी काव्य रचनाएं करनी प्रारम्भ की तो जैसे उनके भीतर विकलांग और उसकी करूणाजन्य अनुभूति ने उसके आत्मविश्वास और स्वाभिमानों तथा साहस ने अपनापूर्ण प्रतिबिंब प्रस्तुत करने के लिए एक विशिष्ट कोटि का चरित्र नायक खोजना प्रारंभ किया। और यह चरित नायक अष्टावक्र के रूप में महाभारत में उन्हें प्राप्त हो गया।

उदाहरण

महाभारत में कहाँ से कहाँ तक

महभारत (वनपर्व) में 132वें अध्याय में "अष्टावक्र के जन्म का वृत्तान्त और उनका राजा जनक के दरबार में जाना " तक वर्णित है । 133वें अध्याय में- "अष्टावक्र का द्वारपाल तथा राजा जनक से वार्तालाप का वर्णन है। " और 134वें अध्याय में 39वाँ श्लोक तक "बंदी और अष्टावक्र का शास्त्रार्थ बंदी की पराजय तथा समंडगा में स्नान से अष्टावक्र के अंगों का सीधा होना।"

महाभारत में वर्णित अष्टावक्र का चरित अध्ययन करने के पश्चात उन्होंने उसमें पर्याप्त संशोधन प्रस्तुत करते हुए अपने जीवन, की अनुभूतियों, अपनी मान्यताओं, अपने युगबोध, और अपनी सहज विनम्रता को समन्वित किया और इस प्रकार अष्टावक्र नूतन परिवेश में नृतन गरिमा के साथ प्रस्तुए हुए।

अष्टावक्र जब गर्भ में थे, तभी उनके शास्त्र जान और शक्ति के आग्रह ने सर्वप्रथम उन्हें उनके पिता द्वारा ही शापित करवाया। उनका जन्म बड़ा कष्टसाध्य हुआ।

बचपन बड़ी कठिनाइयों में बीता। रामभद्राचार्य भी 2 माह की आयु में ही चक्षुहीन हो गये उनका छोटा भाई भी हठपूर्वक अकारण ही उन्हें परेशान करने लगा। अष्टावक्र के लगभग समवयस्क व सहपाठी भ्राता श्वेतकेतु उन्हें उपेक्षित करते थे, तो वाराणसी के कालेज के सहपाठी भी इनके विरूद्ध नाना प्रकार के षड़यंत्र रचते थे। किन्तु इनको योग्यताओं से प्रभावित होकर बाद में सहयोगी बने। राजर्षि जनक की सभा में अष्टावक्र को पहले घोर उपेक्षा मिली किन्तु बाद में सभी ने उनकी प्रतिभा का अभिनन्दन किया।

सहपाठी का व्यवहार महाकवि के शब्दों में-

“अध्ययन में मेरी रुचि थी, एक आनन्द और उत्साह था, विद्यार्थियों में ईर्ष्या होनी स्वाभाविक होती है। मुझे स्मरण है जब मेरे सहाध्यायियों में कुछ ईर्ष्या थी। उन्होंने सोचा जब इनसे कोई सुनेगा ही नहीं तो इनको विषय कैसे स्पष्ट होगा? इसलिए जब उन लोगों ने निर्णय लिया कि इनके साथ शास्त्रीय चर्चा नहीं करनी है. मैने मुक्त कंठ से उनके निर्णय का स्वागत किया और दीवार को ही श्रोता बनाकर मैं उसे ही ग्रंथ सुना दिया करता था। इससे मुझे और किसी की अपेक्षा ही नहीं रही।"

'अनन्तर उत्तर मध्यमा द्वितीयवर्ष की परीक्षा देने के लिए मै फिर वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय आया। उन दिनों वहाँ राजनीति चलती थी, एक विद्यार्थी उत्तर-मध्यमा द्वितीय वर्ष को 'टाप' करना चाहता था। इसलिए मुझे ब्लैकमेल करता था। अंधेरे में रखने का प्रयास कर रहा था । उसका विश्वविद्यालयीय परिचय क्षेत्र लम्बा था उसने परीक्षाधिकारी से मिल-मिलाकर एक अयोग्य परीक्षक नियुक्त करवाया उसकी नीति यह थी कि यदि परीक्षक अयोग्य होगा तो या तो इनके प्रश्नों को समझेगा नहीं, या तो इनकी योग्यता से चिढ़कर कम अंक दे देगा, जिससे मैं विश्वविद्यालय को टाप कर सकूँगा। उसने अपनी कूटनीति के अनुसार वहीं करवाया। अन्ततोगत्वा उसके सारे प्रयास असफल हुए और उत्तर-मध्यमा द्वितीय वर्ष भी मैंने ही टॉप किया।

हमारे महाकवि भी अनेक उपेक्षाओं और षडयंत्रों को झेलते हुए आगे बढ़ते रहे। और उन्हें भी इनकी प्रतिभा ने सर्वोच्च शिखर पर प्रतिस्थापित कर दिया। अष्टावक्र के नाना ऋषि उद्दालक जो इनके गुरू भी थे, उन्होंने सदा ही उनको प्यार और प्रेरणा दी। साहस बढ़ाया और उच्च भूमिका के लिए तैयार किया। हमारे कवि के बाबा पंडित सूर्यबली मिश्र ने भी इन्हें प्यार, प्रेरणा और साहस दिया। बाद के अनेक गुरूओं ने अपने ज्ञान और प्रेरणा के वचनों से इनके व्यक्तित्व को निखारा। मेरी स्वर्णयात्रा में इन सारी घटनाओं का इन्होंने स्वयं भी वर्णन किया है।

महाकवि के शब्दों में-

जैसे- 'मुझे अच्छे-अच्छे छन्दों को कंठस्थ करने का बड़ा व्यसन था। मेरे दादा सवैया बहुत गाया करते थे। उनसे मै क्रम से दो-दो, तीन तीन सवैया सीखा करता था। वे कहते कि मेरे चरण दबाओं मैं तुम्हें सवैया सिखाऊँ, मैं उनके चरण दबाता और वे मुझे सवैया सिखाते थे

और मेरे यहाँ जब कोई सम्बन्धी आता था मै उसे सवैया बहुत सुनाता और कहता कि मुझे कोई अच्छा सवैया सिखाइये।"

'वर्तमान में गौरीशंकर संस्कृत विश्वविद्यालय के व्याकरण के प्राचार्य श्री दिनकरमणि द्विवेदी के यहां मैंने अपने पाठ का प्रारम्भ किया। उन्होंने सामान्य बालक जानकर एक-एक, दो-दो अक्षर कंठस्थ कराना प्रारम्भ किया। वह कहते (नत्वा) और मुझसे कहते कि कहिए नत्वा, मैंने कहा पूरा पढ़ जाइये, तो उन्होंने कहा "नत्वा सरस्वती देवी" और फिर यही अपेक्षा की तो मैने कहा पूरा श्लोक पढ़ जाइये। तब उन्होंने कहा

नत्वां सरस्वती देवी, शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।

पाणिनीय प्रवेशाय, लघु सिद्धान्त कौमुदीम्।।

अष्टावक्र महाकाव्य में जनक के दरबार में अहंकारी बंदी (जो पराजित विद्वानों को जलमग्न कर देता था) को भी क्षमा कर दिया। रामभद्राचार्य ने भी अपने साथ छल कपट, उपेक्षा का व्यवहार करने वाले को न केवल क्षमा किया अपितु अपने सहज, स्नेह और करूणा से लाभान्वित भी किया। अष्टावक्र से प्रकृति ने जितना अधिक छीना था उन्होंने समाज को उससे कहीं अधिक दिया। इसी प्रकार हमारे कवि को समाज ने जितना अधिक वंचित किया था, उससे अधिक इन्होंने समाज को दिया। यहाँ मानव को ये पंक्तियाँ सहज हो स्मरण हो आती है-

उमा संत कइ इहइ बड़ाई, मंद करत जो करइ भलाई।

तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा, रामु भजें हित नाथ तुम्हारा।।

निष्कर्ष

अष्टावक्र और रामभद्राचार्य न केवल महान ज्ञानी, साहसी, तथा दृढ़ निःश्चयी थे, अपितु परम विनीत करूणाशील, और उदार भक्त भी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे कवि को अपने काव्य में व्यक्तित्व का काव्यरूपी प्रकटीकरण करने के लिए अष्टावक्र ही सबसे उपयुक्त चरित नायक है।

चतुर्थ अध्याय

शैक्षिक दर्शन एवम् विचारधारा

4.1 जगद्रुरू के दार्शनिक विचार

जगद्रुरू चूँकि विशिष्टाद्वैतवाद के प्रवर्तक हैं इसलिये इनका मानना है कि -

एतद्सेयं नित्यं मेवात्म संस्थ नात, परं वेदनीय चकिंचित,

भोक्ता भोग्यं प्रेरिता रंचमत्वा सर्व प्रोवतंविविधं ब्रह्मयेतत्।।

अर्थात् यही जानने योग्य है जो निरन्तर हमारे शरीर में विराजमान हैं। इससे अधिक श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है और इसके अतिरिक्त कुछ भी जानने योग्य नहीं है। ब्रह्म तीन प्रकार है- भोक्ता, योग्य, प्रेरक। यद्यपि बह्म जो परमात्मा है परन्तु जीवात्मा को भी विशेषण मानकर कह दिया गया है जैसे त्रिदण्डी गच्छति कहने से त्रिदण्ड धारण करने वाले के साथ त्रिदण्ड का भी गमन सिद्ध होता है क्योंकि विशेषण विशेष्याधीन होता है। जीव भोक्ता है जगत भोग्या है और परमात्मा उसके प्रेरक हैं यह तीन प्रकार का जो तत्व है वह सब ब्रह्म ही है क्योंकि परमात्मा शरीर है इसलिये स्मृति में कहा गया है कि -

"जगत्सर्व शरीरं ते"

अर्थात् समस्त संसार आपका शरीर है यह ब्रह्मचित्त और अचित इन दोनों तत्वों से विशिष्ट है। ये दोनों ही परमात्मा के अधीन है इस प्रकार तुलसीदास कहा है -

जगत प्रकास्य प्रकाशक रामू

मायाधीस ज्ञान गुन धामू।

सबकर परम प्रकासक जोई

राम अनादि अवधपति सोई।।

शंकराचार्य ने धर्म के दो लक्षण माने

1. प्रवृत्ति 2 निवृत्ति

किन्तु जगद्गुरू रामभद्राचार्य ने तीन लक्षण माने

1. प्रवृत्ति लक्षण धर्म

2. निवृत्ति लक्षण धर्म

3. प्रपत्ति लक्षण धर्म

वह ब्रह्म पद से अभिहित हुआ। जैसे वेदान्त में उसे कहा योगादि दर्शनों में परमात्मा, पुराणों में उसी प्रकार बाल्मीकि रामायण में राम कहा गया ही राम' है।

विशिष्टाद्वैत वाद श्री सम्प्रदाय का सनातन वैदिक सिद्धान्त उसके प्रवर्तक स्वयं श्री वैष्णवाचार्य आद्य जगद्गुरू जग जननी सर्वशक्तिमान भगवती श्री सीताहैं। प्रत्येक वैदिक सम्प्रदाय वेद सम्वत दर्शन सिद्धान्त से सम्बद्ध होता जानकी के परिवर्ती श्री हनुमान श्री जी, वशिष्ठ आदि ने इस सिद्धान्त को बडे मनोयोग से पल्लवित किया है। सौभाग्य एवं ईश्वर की कृपा से इसी श्री सम्प्रदाय विशिष्टाद्वैत की अनुयायनी जगद्गुरू रामानन्दचार्य के पश्चात् वर्तमान में तुलसी रामानन्दाचार्य विद्यापाचस्पति धर्म चक्रवर्ती स्वामी रामभद्राचार्य महाराज विशिष्टाद्वैत वाद को प्रस्थानत्रयी के माध्यम से निहार रहे वह विद्वज्जन के लिए पाद्येण है।

ये अध्ययन गुरू के निम्न भाष्य से लिया गया है-

1. श्वेताश्वतरोपनिषद्

2. रामचरित मानस

4.2 शिक्षा

जगदगुरू रामभद्राचार्य जी, शिक्षा के क्षेत्र में विचार रखते हुए कहते हैं कि समाज के समस्त जनमानस के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए लेकिन उनकी दिव्यदृष्टि दिव्यांग बालकों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थी, इसीलिए उन्होंने दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर तक के दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए 2 शिक्षालयों का स्वयं शिलान्यास करते हुए तुलसी प्रज्ञा चक्षु विद्यालय एवं जगदगुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय का निर्माण करवाएं एवं विशिष्ट विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की।

तुलसी प्रज्ञाचक्षु विद्यालय



चित्र संख्या 4.7 तुलसी प्रज्ञाचक्षु विद्यालय

23 अगस्त 1996 ई के दिन स्वामी रामभद्राचार्य ने चित्रकूट में दृष्टिहीन विद्यार्थियों के लिए तुलसी प्रज्ञाचक्षु विद्यालय की स्थापना की।

जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय



चित्र संख्या 4.7 जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय

उन्होंने 27 आश्विनपूर्व, 2001 को चित्रकूट धाम, उत्तर प्रदेश में जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांगविश्वविद्यालय की स्थापना की। विश्वविद्यालय की आधारशिला को वैशाख 2, 2001 के दिन निर्धारित किया गया। विश्वविद्यालय का उद्घाटन राजनाथ सिंह द्वारा 26 पूर्वश्रावण, 2011 को किया गया था। विश्वविद्यालय के लिए पहले चित्रकूट विकलांग विश्वविद्यालय (सीएचयू) शीर्षक विचारित किया गया था, किन्तु तत्काल जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय को शीर्षक के रूप में निर्वाचित किया गया।

4.2.1 परिवार शिक्षा

जगद्गुरू रामभद्राचार्य के साहित्य में परिवार शिक्षा अत्यन्त उल्लेखनीय है

परम पूज्य गुरूदेव की आरम्भिक शिक्षा इनके पूज्य पितामह श्रीयुत् सूर्यबली मिश्राके प्रयासों से स्वामी ने पाँच वर्ष की आयु में सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत का ज्ञान प्राप्त किया तथा आठ वर्ष की आयु में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस को क्रमबद्ध पंक्ति संख्या सहित कंठस्थ कर ली थी। आपके पूज्य पितामह आपको खेत की मेड़ पर बिठाकर आपको एक-एक बार में ही रामचरितमानस के पचास-पचास दोहों की आवृत्ति करा देते थे। आप उसी प्रकार उन पचासों दोहों को पंक्ति क्रम संख्या कंठस्थ कर लेते थे।

प्रस्तुत ग्रन्थ प्रभुकरि कृपा पाँवरी दीन्हीं इसमें परिवार शिक्षा के निम्न रूप से परिलक्षित होते हैं भरत पादुका प्रसंग में इनके पूज्य पितामह पं० सूर्यबली मिश्रा ने इनको तीन वर्ष की अवस्था में इनको खेत की मेड़ में बैठकर यह प्रसंग सुनाया।

"प्रभु करि कृपा पॉवरी दीन्हीं, सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।"

इस चौपाई को गाते-गाते भाव विभोर हो गये और लगभग दस मिनट तक सिसक सिसक कर बालकों की भाँति रोते रहे तब मैंने अपनी - अवधि भाषा में पूछा-बाबा। पादुका कहाँ बा" ।। पादुका कहाँ बा तब उन्होंने सहाजता से मुझे अपनी पादुका दे दी और मैंने भी उनको सिर पर रख लिया तब से मेरे मन पर इस प्रसंग का मनोरम चित्र बन गया जो अद्यावधि यथावत है।

परिवार शिक्षा के मूल्यों में प्रेम, स्नेह, शान्ति, सहानुभूति, सहयोग, परोपकार, भाईचारा, दया, करूणा, परिवार में समायोजन एवं समंवय स्थापित करने से है। पूज्य गुरूदेव के इस ग्रन्थ में ये मूल्य विधिवत जान पड़ते हैं।

4.2.2 सामाजिक शिक्षा

भारतीय समाज में मूल्यों का प्रमुख स्रोत धर्म रहा है। धर्म मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करता है। मूल्यों का प्रारम्भ परिवार से होता है। परिवार के दायरे से बाहर निकलकर मनुष्य व्यापक समाज में आ जाता है। अतः साहित्य और समाज मूल्यों के दर्पण है। उपनिषदों के सत्यम वाद धर्माचार से लेकर कबीर, तुलसी, रहीम के नीति काव्य तक व्याप्त नीति साहित्य मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रत्यक्ष प्रयास है। मूल्य शब्द में आवश्यकता, प्रेरणा, आदर्श, अनुशासन, प्रतिमान आदि अनेक अर्थों में प्रयोग होता है।

सामाजिक शिक्षा के मूल्यों में जैविक मूल्य आध्यात्मिक मूल्य, आन्तरिक मूल, बाह्यमूल तथा दूसरों की सहायता में रूचि लेना तथा चरित्र तथा परस्पर प्रेम के मूल्य आते है।

प्रस्तुत ग्रन्थ तुम पावक मँह करहु निवासा में सामाजिक शिक्षा में मूल्य निम्नवत् है-

द्वितीय पुष्प स्वामी ने भगवान राम के नाम, रूप, लीला, धाम पर विश्राम, पंचवटी आश्रम तथा प्रभु की लीलाओं का वर्णन हे बाल लीला, विवाह लीला, वन लीला, रण लीला तथा उनके अयोध्या के राजगद्दी का सुन्दर चित्रण किया गया है। इन विभिन्न प्रकार की लीलाओं के माध्यम से मानव समाज में परिवर्तन देखने को मिलता है। इन लीला के माध्यम से समाज में बदलाव आता है तथा लोग श्री सीताराम की भक्ति की ओर आकर्षित होते हैं।

सप्तम् पुष्प में प्रभु श्री रामसीता के अग्नि में प्रवेश हो जाने की के बात कही गई है और सीता के ऊपर अयोध्या वासियों द्वारा सीताहरण तथा उस राक्षस रावण के घर में रही सीता के ऊपर दोष को निरूपित किया गया है तथा सभी पक्षों का खण्डन किया गया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में सामाजिक शिक्षा के मूल्य देखने को मिलते हैं। इस कारण भी वहाँ का समाज कैसा है जो भगवती श्री सीता जो पतित पावन गंगा के समान पवित्र कोमल कमल के समान पवित्र शीतल हृदय वाली स्त्री पर वह अयोध्या समाज दोष ठहरा रहा है। इस प्रकार सामाजिक मूल्य देखने को मिल रहा है।

4.2.3 लोकतान्त्रिक शिक्षा

जिन मान्यताओं के आधार पर हम अपने को अपने समाज को न केवल धारण और व्यवस्थित कर पाते हैं, बल्कि दोनों में निहित लोक मांगलिक सम्भावनाओं को चरितार्थ भी

करते हैं वे मानव मूल्य कहलाते है। भारतीय समाज व संस्कृति में गुणवत्ता लाने के लिए लोकतांत्रिक मूल्य निम्नलिखित

- मानव के व्यक्तित्व गुणों का विकास करना है।
- अच्छी आदतों का निर्माण करना।
- .सामाजिक गुणों का विकास करना । जैसे- सहानुभूति, सहनशीतला, कर्त्तव्यपरायणता, पारस्परिक सद्भव आदि का विकास करना।
- आत्मानुशासन की भावना का विकास करना।
- जीविकोपार्जन की क्षमता प्रदान करना ।

4.3 अनुशासन

अनुशासन से अभिप्राय नियन्त्रित एवं आदेशित आचरण से है। कुल मिलाकर नियमों व नियन्त्रण के अनुरूप चलने की प्रक्रिया को अनुशासन कहा जाता है। अनुशासन किसी भी राष्ट्र, समाज एवं संगठन के लिए आवश्यक है। इसके माध्यम से व्यक्ति की भावनाओं और शक्तियों को नियमबद्ध करके दक्षता तथा लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है। अनुशासित समाज किसी भी राष्ट्र विकास का आधार होता है।

4.4 गुरु शिष्य सम्बन्ध

गुरु सर्वदा अपने शिष्य का हित ही करता है। उनके चरणों में समर्पण कर देने के बाद आगे का मार्ग गुरु स्वयं साफ करता है। अर्जुन ने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया तो भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता का ज्ञान सुना कर उनका मोह, अज्ञान नष्ट कर दिया। उद्धव को अपने ज्ञान का इतना अहंकार हो गया कि वह अपने आगे सबको तुच्छ समझने लगे। तब श्रीकृष्ण ने उन्हें गोपियों के पास भेज कर भक्ति और समर्पण की शक्ति का महत्व समझाया और उनके ज्ञान के अहंकार को तोड़ा। इस प्रकार अपने शिष्यों में अहंकार बढ़ते देख गुरु सहन कर नहीं पाता, क्योंकि अहंकार बड़ा ही घातक होता है। वह आदमी को पतन के मार्ग पर ले जाता है। गुरु अपने शिष्य को निरहंकार बना कर उसे उत्थान की ओर ले जाता है। सम्पूर्ण समर्पण की स्थिति में सद्गुरु शिष्य की अन्तरात्मा में अपना स्थान बना लेता है तथा वहीं बैठ कर शिष्य का मार्गदर्शन करता है।

अध्यात्म मार्ग में गुरु के सहारे ही प्रगति संभव होती है। गुरु ऐसा पारस है कि शिष्य को अपने से भी श्रेष्ठ बना देता है। गुरु-शिष्य का संबंध एक जन्म का नहीं होता, जन्म-जन्मान्तरों का होता है। वह लौकिक नहीं, अलौकिक होता है। वह स्वार्थ का नहीं, समर्पण और करुणा का गठजोड़ जैसा होता है। गुरु एक ऐसी टकसाल है, जो अपने सांचे में अपने प्राणबल, तपोबल के सहारे प्रखर व्यक्तित्वों का निर्माण करता है। साधारण को असाधारण और तुच्छ को महान बनाता है। देश ने जब भी महानता का शिखर स्पर्श किया है, उसके पीछे सद्गुरुओं का हाथ रहा है। कभी भारत जगत्गुरु कहलाता था तो वह सद्गुरुओं के आशीर्वाद के कारण ही था। गुरु समग्र विश्व का मित्र होता है।

4.5 धार्मिक और नैतिक शिक्षा

नैतिक शिक्षा को धार्मिक शिक्षा से पृथक नहीं किया जा सकता है। नैतिक शिक्षा को चारित्रिक विकास के रूप में देखते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि नैतिक शिक्षा उपयुक्त आचरण तथा आदतों के विकास से संबंधित है। बालक का नैतिक विकास सामाजिक जीवन की स्वाभाविक देन है अतः नैतिक विकास सामाजिक विकास से अलग कोई वस्तु नहीं है।

4.6 राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय शिक्षा

राष्ट्रीयता तथा शिक्षा कहने का तात्पर्य यह है कि राष्ट्र को सबल तथा सफल बनाने के लिये नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना विकसित करना परम आवश्यक है। ध्यान देने की बात है कि राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने के लिए शिक्षा की आवशयकता है।

पंचम अध्याय

5.1 शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता

प्रस्तुत लघु शोध अध्ययन का विषय “जगद्गुरु रामभद्राचार्य का शैक्षिक दर्शन” वे कहतें हैं कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षा पाकर हमारी हालत उस कबूतर की भाँति हो गई है जो पेड़ पर बैठा हुआ है और नीचे बिल्ली को देख अपना होश हवास खो देता है। अपने पंखों की शक्ति को भूलकर वह स्वयं घबराकर उस बिल्ली के समक्ष गिर जाता है। जगद्गुरु रामभद्राचार्य कहते हैं कि हमारी आत्मा में अनन्त शक्ति है। आज उसे प्रकट करने और सही दिशा देने की अत्यन्त आवश्यकता है। आज हम ज्ञान को महत्व नहीं दे रहे बल्कि जो ज्ञान द्वारा जाना जाता है उसे ज्ञेय पदार्थों को महत्व दे रहे है। ऐसे में उनका मानना है कि हम मूल स्रोतों से जुड़ें और अपनी संज्ञानात्मक प्रवृत्ति को समृद्ध करें। साथ ही अपने आप को पहचाने और आवश्यकता के अनुसार क्रिया करने वाले बने। वर्तमान में शिक्षा मात्र सूचना संसाधन बनकर रह गई है। जगद्गुरु रामभद्राचार्य का मानना है कि हम पुस्तक से जुड़े लेकिन पुस्तकों तक सीमित न रहे हैं। जैसे मन्दिर में भगवान की मूर्ति से कुछ क्षण के लिए हम जुड़कर अगले ही क्षण उस मूर्ति से अलग होकर भगवदभाव से जुड़ जाते हैं। यदि हम ऐसा नहीं कर पाते हैं तो दर्शन पत्थर के होते हैं, भगवान के नहीं। उनकी अवधारणा ने शिक्षा को भाषात्मक भावात्मक बना दिया है. साथ ही शिक्षक के महत्व व उनके अनुभव को उन्होंने महत्वपूर्ण बना दिया है।

शिक्षा की संकल्पना स्पष्ट करते हुए कोठारी आयोग 1964 ने लिखा है कि भारतीय परम्परा अनुसार शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का साधन मात्र नहीं है और न तो विचारों कि उदगमस्थली है न के तो नागरिकता कि विचारधारा व आध्यात्मिक जीवन कि शिक्षा है, वह सत्य के मार्ग का अनुसरण तथा सदगुणों का प्रशिक्षण है। शिक्षा बालक का द्वितीय जन्म है। शिक्षा मुक्ति प्रदान करती है।" वर्तमान शिक्षा ने बसु कुटुंबकम की भावना को पीछे द्वापर युग में ढकेल दिया है। भौतिकवादी दर्शन से प्रभावित होकर व्यक्ति आज मानवता विहीन, संस्कार रहित, संवेदना शून्य, आत्मीयता से पृथक यंत्र बनकर रह गया है, जिसमें रिश्तों के प्रति कोई संवेदना, लगाव, दर्द नहीं है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-53 के अनुसार “वह शिक्षा कहलाने योग्य नहीं है जो व्यक्तियों को उनके साथियों के साथ गरिमा, सामंजस्य तथा कुशलता के साथ रहने के आवश्यक गुणों का विकास नहीं करती है।” वर्तमान की तकनीकी शिक्षा, आत्मशान्ति,

आत्मसन्तुष्टि जैसे शब्दों को नहीं छु पा रही है। आज के अर्थ प्रधानी व्यक्ति ने नौकरी को शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य मान लिया है। अर्थ की ओर दृष्टिपात होने से मानव पतन की ओर जा रहा है। पैसा कमाने की धन में वह अपना स्वास्थ खो रहा है और फिर स्वास्थ्य पाने के लिए पैसा। अन्ततः उसके पास न पैसा शेष रह पाता है और न ही स्वास्थ्य अप्रत्यक्ष रूप से इसे शिक्षा की अवनति के रूप में लिया जा सकता है। शिक्षा की इस अवनति से जगद्गुरु रामभद्राचार्य व्यथित है। उनका मत है कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो कि मनुष्य को मानव बनाये उसके आन्तरिक चेतना में सदगुणों का विकास करें, जिससे वह असीम सन्तोष व शान्ति से भर जाए उनका मानना है कि शिक्षित वह नहीं है जो संवेदना शून्य व सूचनाओं का संचित कोश है, अपितु शिक्षित वह है जो मानवीय गुणों से समन्वित, संवेदना से युक्त व भावभारित है। इसलिए उन्होने शिक्षा को जीवन का एक पवित्र संस्कार माना है जो मानवतावादी सिद्धान्तों पर चलना सिखलाती है। उन्होंने कर्तव्य, नैतिकता, उदारता, सेवा एवं समर्पण को शिक्षा के संस्कारों का परिवार माना है। जगद्गुरु रामभद्राचार्य ने शिक्षा में संस्कार व मानवतावाद को लाकर उसके बिखरे परिवार को जोड़ने का एक सार्थक प्रयास किया है। उनका यह प्रयास स्वार्थ की आँधी में प्रबल वेग से उड़ रहे मनुष्य को मानव बनाने का है। उनके सार्थक एवं सफल प्रयासों से भारत खोई संस्कृति व संस्कार को पुनर्जन्म देकर जगद्गुरु बन सकता है।

जगद्गुरु रामभद्राचार्य ने शिक्षा को हित का सृजन और अहित विसर्जन के साथ जुड़ा है। हित सृजन शिक्षा का एक ऐसा सशक्त लक्षण है जिसके अन्तर्गत विद्यार्थी का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास समाहित है। यह विकास हित अर्जन में ऐसे समाहित है, जैसे माँ के गर्भ में शिशु इन विचारों से आत्मिक प्रेरणा प्राप्त कर व्यक्ति हित अहित का भेद कर इंसानियत से परिचय पाकर प्रत्येक परिस्थितियों में सामंजस्य करने में सक्षम बन सकता है। हित का सृजन नैतिक आध्यात्मिक मूल्यों का प्रतीक है जिसे पाकर विद्यार्थी उच्चतम ऊँचाई व अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर सकता है।

वर्तमान की यह अवधारणा है कि शिक्षा व्यक्ति को जीवन निर्वाह के लिए तैयार करती है परन्तु जगद्गुरु रामभद्राचार्य का मानना है कि मनुष्य में विकास की अनन्त सम्भावना है इसलिए शिक्षा वास्तविक अर्थ में जीवन निर्माण न होकर मानव जीवन निर्माण होना चाहिए। जिससे विद्यार्थी अपनी शक्ति को उच्चतम बिंदु तक विकसित कर शिक्षा के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। कोठारी आयोग ने शिक्षा को आध्यात्मिकता से जुड़कर सदगुणों का प्रशिक्षण

बताकर नैतिक मूल्यों की बात की है। जगद्गुरु रामभद्राचार्य ने भी शिक्षा के सन्दर्भ में किसी धर्म विशेष की न करके मानवतावादी सिद्धान्तों पर जोर दिया है। उनके यह विचार भारत जैसे धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के लिए अति प्रासंगिक है। उनकी इस विचारधारा को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सन्निहित करने से शिक्षा के स्वरूप एवं प्रगति निश्चित रूप से प्रभावित होगी जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा की अवधारणा को परिमार्जित कर शिक्षा को पुनः जीवन प्रदान करेगा।

भारत अपनी शिक्षा, संस्कृति तथा दर्शन के लिए प्रसिद्ध है। भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों के आधार पर यह संस्कृति सारे संसार का पथ प्रदर्शन करती है। प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना, मध्यकाल में धार्मिक प्रचार करना तथा ब्रिटिश काल में सरकारी नौकरी प्राप्त करना था। इस तरह तैयार करने वाली शिक्षा ने बेकारी को जन्म दिया है। लोग पैतृक व्यवसाय से दूर होकर हाथ से कार्य करने में लज्जा महसूस करने लगे है। अंग्रेजों से विरासत में मिली यह शिक्षा पुस्तकीय एवं सैद्धांतिक ही रही है। इस शिक्षा पद्धति ने जीवन के लिए कोई नए द्वार तो नहीं खोले ।

स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षा की दिशा एवं दशा में बदलाव हेतु भारत सरकार ने भारत विभिन्न आयोगों की नियुक्ति की गयी। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948 ने नेतृत्व के विकास पर बहुत अधिक बल दिया। इस उद्देश्य पर बल इसलिए दिया गया कि स्वतंत्र हुए हमें कुछ ही दिन हुए थे। प्रत्येक क्षेत्र में कुशल मार्गदर्शन की नितांत आवश्यकता थी। माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-53 तथा कोठारी आयोग 1964 द्वारा निर्दिष्ट शिक्षा के उद्देश्य समानता को लिए हुए है। कोठारी आयोग ने शिक्षा को उत्पादकता से जोड़ा है तो मुदलियार आयोग ने व्यावसायिक क्षमता के विकास की बात की। कोठारी आयोग ने शिक्षा द्वारा सामाजिक राष्ट्रीय एकता को सिद्ध करना चाहा तो मुदालियर आयोग ने जन नागरिक भावना के विकास की सिफारिश की। दोनों एक दूसरे के पूरक है।

वर्तमान शिक्षा भौतिक प्रगति तो कर रही है, साथ ही भविष्य में अनेक आशाएँ भी की जा रही है जिनकी पूर्ति में कोई शंका प्रतीत होती है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को मानव बनाने में कहाँ तक सफल हुआ यह विचारणीय प्रश्न है। आज मनुष्य मानव नहीं बन पा रहा है और न ही उसे स्व का ज्ञान है। शिक्षा एक जीवन दृष्टि है जो बालक सुप्त शक्तियों को जाग्रत कर उसे नई चेतना प्रदान करती है। शिक्षा के द्वारा ही बालक का सर्वांगीण विकास होता है। अपने आप को जाने बिना हम पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकते और आज की शिक्षा स्व ज्ञान के अलावा

सभी ज्ञान का प्रशिक्षण दे रहीं हैं। इसीलिए आज व्यक्ति के पास सब कुछ होते हुये भी वह सन्तुष्टि नहीं मिल पा रही हैं जो उसे शिक्षा प्राप्त करके मिलनी चाहिए।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि जगद्गुरु रामभद्राचार्य के शैक्षिक विचार वर्तमान शिक्षा के सम्बन्ध में अत्यन्त प्रासंगिक है। जगद्गुरु रामभद्राचार्य के अनुसार शिक्षा जीवनदायिनी होना चाहिए एवं उनके द्वारा सुझाया गया मार्ग निश्चित रूप से विद्यार्थी जीवन के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त करेगा। जो अकादमिक ज्ञान के साथ-साथ उनका व्यक्तित्व एक प्रकाश पुंज की तरह विकसित होगा जो समस्त समाज एवं देश को प्रकाशित कर सकेगा।

यदि शिक्षाविद शिक्षानीति निर्धारक उपयुक्त विवेचित आयामों को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने की दिशा में ठोस कार्य करते है तो निश्चित रूप से बदले हुए शिक्षा के स्वरूप से एक नया सुसंस्कारित समाज देखने को मिलेगा। यह बात निश्चित एवं सर्वमान्य है कि एक बार परिस्थितियों के बिगड़ जाने पर उसे सुधारना एक दुष्कर कार्य है पर इस दिशा में एक प्रयास जगद्गुरु रामभद्राचार्य के शिक्षा की संकल्पना के माध्यम से जरूर किया जा सकता है इसलिए कहा भी गया है 'रसरी आवत जात ही शिल पर होत निशान' अर्थात जिस प्रकार रस्सी के कई बार एक ही स्थान पर चलने से वहाँ कठोर वस्तु पर निशान पड़ जाते है उसी प्रकार यदि ईमानदारी, लगन, तन्मयता एवं मजबूत तन्मयता संकल्प के साथ काम किया जाये तो निश्चित रूप से सुधार सम्भव है। जगद्गुरु रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन वर्तमान शिक्षा प्रणाली की कमियों को दूर करने की दिशा में मील का पत्थर साबित हो सकती है।

षष्ठ अध्याय

निष्कर्ष एवं सुझाव

6.1 निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन जगद्गुरू स्वामी श्री रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन के मूल्यों का अध्ययन करना था। जिसके लिए शोधकर्ता ने निम्नलिखित उद्देश्यों को निर्मित किया

1. जगद्गुरू स्वामी श्री रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन में निहित परिवार शिक्षा सम्बन्धी मूल्यों का अध्ययन करना।

2. जगद्गुरू स्वामी श्री रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन में निहित लोकतांत्रिक मूल्यों का अध्ययन करना।

3. जगद्गुरू स्वामी श्री रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन में निहित सामाजिक शिक्षा सम्बन्धी मूल्यों का अध्ययन करना।

1. प्रथम उद्देश्य

जगद्गुरू रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन रामचरितमानस में परिवार सम्बन्धी मूल्यों को प्रस्तुत करना ।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में उपरोक्त उद्देश्य के सन्दर्भ में अध्ययन के पश्चात् ज्ञात हुआ कि जगद्गुरू रामभद्राचार्य के रामचरितमानस में परिवार सम्बन्धित मूल्य विविध रूप में दिखाई पड़ रहे हैं, इन्हीं मूल्यों को लेकर वे समाज व मानवों में अच्छे नैतिक मूल्य विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं तथा इन मूल्यों के द्वारा विकलांगों को पूर्ण शिक्षित करने का कार्य कर रहे है। वे कथाकार, रचनाकार सकल कूटनीतिज्ञ मूर्धन्य वक्ता हैं जिन्होंने रामचरितमानस में मूल्य शिक्षा पर विशेष जोर दिया है।

2. द्वितीय उद्देश्य

जगद्गुरू रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन में निहित सामाजिक शिक्षा सम्बन्धी मूल्यों का प्रस्तुत करना

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में उपरोक्त उद्देश्य के सन्दर्भ में अध्ययन के पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि जगद्गुरू रामभद्राचार्य के सामाजिक शिक्षा पर उत्तरखण्ड में सामाजिक मूल्य विहीन कलयुग की समाज व्यवस्था के मूल्यों को विकसित करने में विशेष रूप से बल दिया है।

3. तृतीय उद्देश्य

जगद्गुरू रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन में निहित लोकतांत्रिक मूल्यों का अध्ययन करना।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के पश्चात् यह पाया गया कि जगद्गुरू रामभद्राचार्य देश सेवा समाज सेवा तथा अपने शैक्षिक दर्शन रामचरितमानस में सुसंस्कृत लोकतंत्रात्मक मूल्यों को विकसित करने का सफल प्रयास किया गया है तथा वे अपनी कथा शैली के माध्यम से श्रोता, भक्तगणों को भाव विभोर कर देते हैं। वे लोकतंत्रात्मक व आदर्श मूल्यों को विकसित करने का सफल प्रयास किये हैं।

जगद्गुरू रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन में निहित मूल्यों का निष्कर्ष

वस्तुतः जगद्गुरू रामभद्राचार्य के मानस की रामकथा बीते युग के आदर्श, जीवन मूल्यों की एक ऐसी अविरल धारा है जो वर्तमान कलयुग में वक्ता, श्रोता, भक्तों के लिए तथा भाई बन्धुओं के लिए जनता के लिए उनकी कथा शैली एक आदर्श के रूप में विख्यात है। वे राम को महानायक मानते हैं जिनके गुणों का अनुसरण जीवन लक्ष्य के रूप में स्वीकार्य कर लिया गया है। मनुष्य के रूप में हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं क्या नैतिक है क्या अनैतिक इसका निर्धारण राम के चरित्र से होता है। स्वामी के शैक्षिक दर्शन रामचरितमानस में भारतीय समाज को न केवल विचार और दर्शन के सूत्र दिये हैं, वरन् आचरण व व्यवहार स्तर पर सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने की प्रेरणा दी है। प्रेम विश्वास, भ्रातृत्व, सेवा, त्याग जैसे महान जीवन मूल्यों को विकसित करने का कार्य पूज्य गुरू देव ने किया है तथा मानवता के अस्तित्व को बचाने का कार्य किया है। पूज्य गुरुदेव का शैक्षिक दर्शन रामचरितमानस सम्पूर्ण मानव जाति का सम्बल है। मानस में निहित जीवन मूल्य एवं आदर्श आज न केवल भारत अपितु सम्पूर्ण मानवता के लिए उपादेय, अनुकरणीय एवं आवश्यक बन गये हैं।

रामचरितमानस के अनुशीलन के पश्चात् मुख्य रूप से लोकहित, सत्य, तप, अहिंसा, मैत्रीभाव, अनुशासन, शालीनता, विनम्रता, दयालुता, शील, सदाचार शिष्टाचार मर्यादा, उदारता, समानता, भाईचारा, परोपकारिता, सहनशीलता, सेवा, प्रेम, दया, क्षमा, संयम, कर्तव्यनिष्ठा, विवेकशीलता, देश भक्ति, धर्मनिरपेक्षता, सादगी ईमानदारी सद्भाव, जिम्मेदारी सम्मान एवं एकता आदि मूल्य प्राप्त होते हैं जो वर्तमान शिक्षा में बहुत ही प्रासांगिक है।

जगद्गुरू रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन में निहित मूल्यपरक शिक्षा की वर्तमान शिक्षा में प्रासांगिकता का निष्कर्ष

यह संसार गुण-दोष की खान है, हमें हमेशा नीर क्षीर विवेकी होकर गुणों का ही चयन करना चाहिए।

जगद्गुरू रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन रामचरितमानस में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यावहारिक, नैतिक मानव मूल्य एवं जीवन मूल्य प्रत्येक चौपाई में अंकित है। रामचरितमानस में निहित मूल्य ही हमारी वर्तमान की समस्याओं के निदान हेतु रामवाण औषधि के समान हो सकते हैं। वस्तुतः रामभद्राचार्य का शैक्षिक दर्शन मूल्यों का शैक्षिक दर्शन है जो हमारे समाज की उन्नति, मानसिक शान्ति, सत्यनिष्ठा, व्यक्ति के प्रति आस्था तथा धर्म के कट्टर पंथ को तोड़कर मानवीय प्रेम और मानवीय धर्म का संदेश देता है।

समाज के सम्पूर्ण विकास की दृष्टि से किसी परम्परा या शैक्षिक दर्शन का अनुकरण किया जाता है न कि अंधानुकरण उसमें से उदादेय तथ्यों को संग्रहित कर अलग छाँटकर संग्रह करना और उनका अनुपालन समाज हित में है। अतः रामचरितमानस में व्याप्त समष्टि के लिए व्यक्ति का त्याग पूर्ण समर्पण की भावना सेवा परायणता, स्वास्थ्य, सामाजिक भावना, सत्यनिष्ठा, सहिष्णुता समन्वय की भावना संपत आचरण, प्रजा के प्रति हितकारी और मंगलमयी भावना ऐसे चारित्रिक गुण हैं जिनकी सदैव हर परिस्थिति में आवश्यकता रहेगी। वे विज्ञान को सामुदायिका कल्याण की भावना से जोड़ा और बुद्धि को आस्था से क्योंकि अति बौद्धिकता और भौतिकता ने ही 'स्व' को प्रश्रय दिया जिससे दया, ममता, करूणा, सहिष्णुता, प्रेम सौहार्द जैसे मानवी मूल्यों का ह्रास होता गया और तृतीय विश्व युद्ध की संभावना से भयभीत प्राणी को एक ऐसा आदर्श एवं एक ऐसे चरित्र की आवश्यकता है जो उसे सही मार्ग दिखाकर भयमुक्त कर सके। अतः राम का चरित्र की आज भी अनुकरणीय है और रामराज्य के रूप में भारत की कल्पना एक सुन्दर कामना है।

अतः जगद्गुरू का शैक्षिक दर्शन न केवल जातीय आधार वरन् एक व्यापक आयाम को अपने में समेटे हुए हैं। रामचरितमानस आज भी उतना उपयोगी और प्रासांगिक है जितना की 400 वर्ष पहले मानस रचना काल में था। किसी ने सच ही कहा है

"कहि न जाए अस अद्भुत बानी" ।

6.2 शैक्षिक निहितार्थ

किसी भी शोध अध्ययन के निष्कर्षों की सार्थकता उसके शैक्षिक निहितार्थ पर निर्भर है। शैक्षिक निहितार्थ न होने पर शोध कार्य की कोई उपायोगिता सिद्ध नहीं होती है, जिससे अमूल्य समय एवं धन की हानि ही नहीं होती बल्कि राष्ट्र को भी उसका लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है।

अतः शोध के शैक्षिक निहितार्थ अत्यन्त आवश्यक है यदि हमें सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों प्रगति करनी है तो रामचरितमानस में निहित मूल्यों की वर्तमान शिक्षा में जरूर स्थान देना चाहिये जिससे शिक्षा मूल्य परक हो और हमारा देश शान्ति एवं सुख के साथ आर्थिक प्रगति भी कर सकें और विश्व गुरू का दर्जा पुनः कर सके और छात्रों में नैतिक, सांस्कृतिक एवं चारित्रिक आदि गुणों को विकसित किया जा सके।

सच तो यह है कि भारत आज भी पाश्चात्य दासता से स्वतंत्र नहीं हुआ है और मूल्यों का हास हो रहा है। शिक्षा जीवन का स्वरूप निश्चित करती है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिए धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक ग्रन्थों का अनुसरण करना अत्यन्त आवश्यक है। हमारे देश में वर्तमान शिक्षा प्रणाली को सुधारने के लिए रामचरितमानस में निहित मूल्यों की महती आवश्यकता है क्योंकि रामचरितमानस अपने देश का राष्ट्रीय ग्रंथ भी है। इसी कारण विद्यार्थियों में सुसंस्कृत, लोकतांत्रिक, नैतिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक गुणों को विकसित किया जाय।

देश की वर्तमान शिक्षा से नैतिकता का जो लोप हुआ है उसे रामचरितमानस के मूल्यों का अनुसरण करके पुनः प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षण संस्थानों में रामचरितमानस में निहित मूल्यों की उतनी उपयोगिता है जितनी दिशा भ्रमित पथिक के लिए पथ प्रदर्शक की होती है। उनके चिन्तन में जो समंवय क्षमता है वह अन्यत्र नहीं है। पूज्य गुरूदेव का शैक्षिक चिन्तन

आधुनिक युग को संतुलित आध्यात्मिक एवं सामाजिक दिशा दे सकता है। वह वर्तमान युग की मानसिकता को परिवर्तित कर सकता है, यह उसका शैक्षिक निहितार्थ है।

6.3 भावी शोध हेतु सुझाव

शोधकर्ता द्वारा पूर्ण किये गये लघु प्रबन्ध मूल्यपरक शिक्षा के सन्दर्भ में "जगद्गुरू रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन" को पूर्णता देने के दौरान कुछ नवीन अनुभवों तथा विचारों की अनुभूति की गई, जिन्हें शोधकर्ता आगामी शोध हेतु सुझावों के रूप में भविष्य के शोधार्थियों की सहायता हेतु प्रस्तुत कर रही है। ये आगामी शोध हेतु सुझाव निम्नलिखित हैं

1. जगद्गुरू रामभद्राचार्य द्वारा सम्पादित रामचरितमानस में निहित मूल्यपरक शिक्षा पर शोध कार्य किया जा सकता है।

2. जगद्गुरु रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन में निहित सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक मूल्यों पर शोध कार्य किया जा सकता है।

3. जगद्गुरू रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन में निहित शैक्षिक विचारों पर शोध कार्य किया जा सकता है। . जगदगुरु रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन में निहित दर्शन ग्रन्थों पर शोध कार्य किया जा सकता है।

5. जगद्गुरू रामभद्राचार्य के शैक्षिक दर्शन में निहित उनके सामाजिक एवं राजनैतिक चिन्तन पर शोध कार्य किया जा सकता है।

6. जगद्गुरू रामभद्राचार्य द्वारा रचित रामकथा पर आधारित ग्रन्थों पर शोध कार्य किया जा सकता है।

7. जगद्गुरू रामभद्राचार्य द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों पर शोध कार्य किया जा सकता है।

जैसे- महाकाव्य ग्रन्थों पर, खण्डकाव्य ग्रन्थों पर, नाटक काव्य ग्रन्थों पर, पत्र काव्य ग्रन्थ, गीत काव्य ग्रन्थ, शतकाव्य ग्रन्थ, स्त्रोतकाव्य ग्रन्थ, दर्शन एवं भाष्य ग्रन्थ शोध ग्रन्थ आदि अन्य ग्रन्थों पर शोध कार्य किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

शुक्ला, शकुन्तला (2020)| *पद्मविभूषण श्री रामभद्राचार्य के साहित्य में निहित मूल्य शिक्षा के तत्त्वों का विश्लेषण*| एम.एड., लघुशोध प्रबन्ध राजा देवी पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, बाँदा (उ.प्र.)

आर्य, हेमंत कुमार (2019)| *माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की शैक्षिक विचारधारा का अध्ययन*| एम.एड. लघुशोध प्रबन्ध अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, अतर्रा (बाँदा)

चतुर्वेदी, शान्त कुमार (2004)| *जगद्गुरु स्वामी रामभद्राचार्य के हिन्दी लघु गीत काव्यों का साहित्यिक अनुशीलन*| पी.एच.डी- हिन्दी, जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट (उ.प्र.)

जगद्गुरु स्वामी रामभद्राचार्य का जीवन परिचय

जगद्गुरु स्वामी रामभद्राचार्य ग्रंथसूची

शर्मा, आर०ए०- मानव एवं मूल्य शिक्षा आर०लाल० बुक डिपो, मेरठ।

माथुर टी०बी० मूल्य परक शिक्षा, रिजनल कॉलेज ऑफ एजुकेशन, अजमेर।

शकुन्तला, पाण्डया जीवन मूल्य, राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर।

पाण्डया, शकुन्तला जीवन मूल्य राजस्थान, राजनैतिक अनुसंधान एवं - प्रशिक्षण संस्थान उदयपुर, 1986

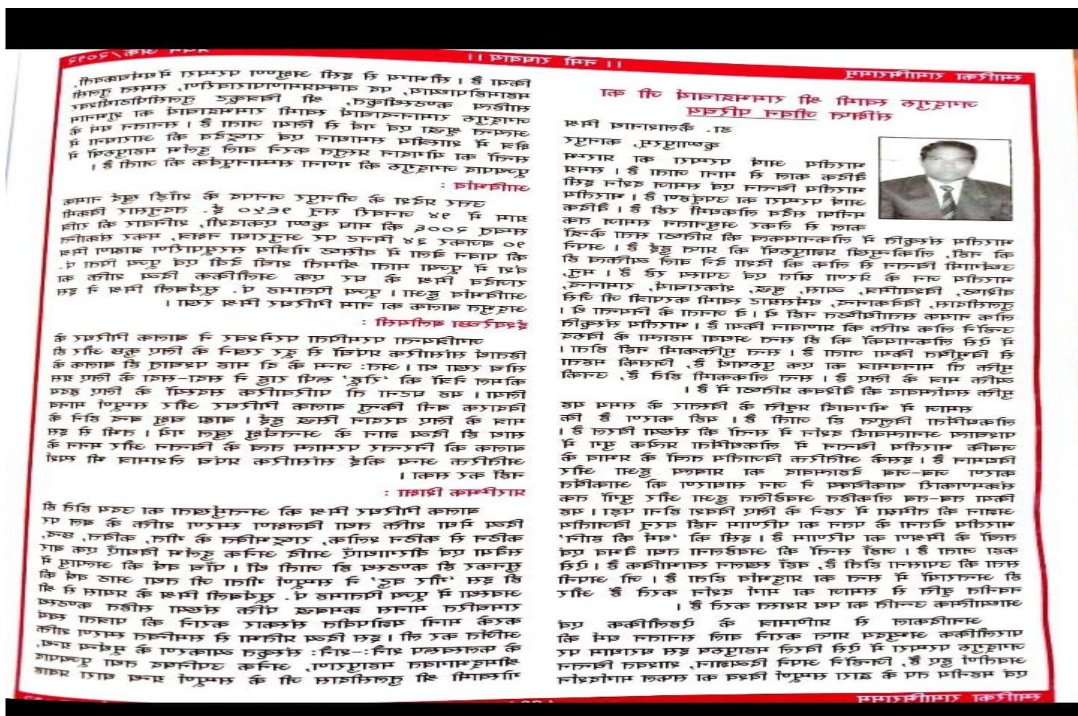
श्री रामचरितमानस - विजय संस्करण सम्पादक, श्री चित्रकूट तुलसी पीठाधीश्वर, जगद्गुरू रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य महाराज

परिशिष्ट

श्रीरामचरितमानस भावार्थबोधिनी हिन्दी टीका



स्मारिका रामाभिरामम (पत्रिका)



मेरी स्वर्णयात्रा



जगदगुरू रामभद्राचार्य जी का शैक्षिक दर्शन



